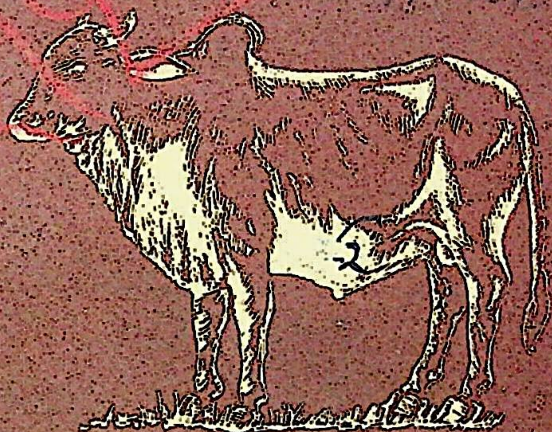


गोसेवा की विचारधारा

संपादक
राधाकृष्ण बजाज



कृपया यह ग्रन्थ नीचे निर्देशित तिथि के पूर्व अथवा उक्त तिथि तक वापस कर दें। विलम्ब से लौटाने पर प्रतिदिन दस पैसे विलम्ब शुल्क देना होगा।

प्रकाशक :
अ० वा० सहस्रबुद्धे,
मंत्री, अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ,
वर्धा (म० प्र०)

संशोधित तथा परिवर्धित संस्करण
चौथी बार : १०,०००
कुल प्रतियाँ : १८,०००
सितंबर, १९५५
मूल्य : आठ आना

मुद्रक :
विश्वनाथ भार्गव,
मनोहर प्रेस,
जतनबर, बनारस

नि वे द न

"गाय को बचाना बड़ी भारी समस्या है। कत्ल से बचाना मेरे खयाल से आसान है, लेकिन कत्ल का कारण हटाना और गाय को सब तरह से समर्थ बनाना बड़ा मुश्किल है।"

—*विनोबा*

पू० विनोबाजी ने ऊपर के वाक्य में गाय के कत्ल के कारण को हटाने और उसे सब तरह से समर्थ बनाने का विचार रखा है। उनके इस विचार को इस किताब में विशद किया गया है, और इस मुश्किल कार्य को आसानी से करने के उपाय को ढूँढ़ने की कोशिश की गयी है। स्वावलंबी अर्थव्यवस्था का आधार गाय है। आज हमारे पास बैल-शक्ति ही एकमात्र विकेंद्रित शक्ति है। विकेंद्रित अर्थ-व्यवस्था के बिना शोषणहीन समाज-रचना संभव नहीं। आज की तेल-केंद्रित अर्थव्यवस्था में दुनिया को शान्ति कैसे मिल सकती है? तेल पर्याप्त न होने के कारण संघर्ष बना ही रहेगा। पशु-शक्ति जरूरत के अनुसार बिना किसी दूसरे का हिस्सा कम किये घटाई-बढ़ाई जा सकती है। इसलिए वह विश्वशांति की पोषक है। मनुष्य जाति को मांसाहार से मुक्त करने के लिए दूध बड़ा सहारा है। मनुष्य-शरीर के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल एकमात्र गो-दुग्ध ही है। रद्दी-से-रद्दी जमीन को उपजाऊ बनाने की सामर्थ्य गाय में है। आज के भारत के उत्थान के लिए गाय सही माने में कामधेनु है।

अब सवाल गाय को समर्थ बनाने का है। गाय समर्थ तभी बन सकती है, जब उसे पर्याप्त चारा-दाना मिले, उसकी नस्ल सुधरे और वह स्वावलम्बी बने, अर्थात् जितना खाये उससे अधिक लौटावे। शास्त्रीय प्रयोगों के आधार पर चारे की खेती या अनाज की फसलों के साथ चारा

बढ़ाया जाना चाहिए। बुरे सांडों को बधियाकर अच्छे सांडों का निर्माण एवं नस्ल-सुधार का प्रयत्न होना चाहिए। गोरस अर्थात् गाय के दूध, दही, घी आदि पदार्थों की वाजिब कीमत मिलनी चाहिए अर्थात् उनकी माँग—उनका बाजार बना रहना चाहिए। बाजार के कायम रहने के लिए आवश्यक है कि हमारे जीवन में उनकी माँग रहे। गोसेवा को माननेवाले सब लोग अपने घरों में केवल गोरस का ही उपयोग करने का संकल्प करें, तो गोरस का बाजार टिक सकता है। जब घर-घर में गोरस का इस्तेमाल होने लगेगा तब समझना चाहिए कि गोसेवा का श्रीगणेश हुआ।

"गो-सेवा की विचारधारा" के तृतीय संस्करण के लिए पू० विनोबाजी ने खास तौर से नयी दृष्टि (दो शब्द) लिख भेजी है। "एक ग्रामीण किसान के जीवन में आज की परिस्थिति के अनुसार गाय-बैलोंकी उन्नति किस तरह हो सकती है, इसका प्रयोग करना चाहिए।" उन्होंने अपने पिछले लेख में यह भी लिखा था कि मुख्य जरूरत है लगन से और ढंग से काम करनेवाले सेवकों की। यदि उनकी इन सूचनाओं पर अमल करें तो हम अपने निश्चित उद्दिष्ट की ओर तेजी से बढ़ सकेंगे। अर्थात् गो-सेवा और उसके द्वारा मनुष्य-सेवा कर सकेंगे। हमारे उद्दिष्ट का बाह्य स्वरूप इस प्रकार माना गया है :

१. गाय का शास्त्रीय पालन हो तथा गोवध कतई बन्द हो।

२. अन्न-वस्त्र की दृष्टि से हर देहात या कुछ देहातों का समूह स्वावलंबी बने।

३. कृषि के साथ गाय का मेल हो और दोनों की वृद्धि हो।

४. हरएक गाय सर्वांगी बने। वह खेती के लायक अच्छे बैल दे और रोजाना कम-से-कम १० सेर दूध दे।

५. देश के हरएक छोटे-बड़े व्यक्ति को रोजाना कम-से-कम ४० तोला दूध मिले।

मैं आशा करता हूँ कि लोग गो-सेवा को केवल पुरातन-पंथियों की रूढ़िवादिता नहीं समझेंगे। भारत के नवनिर्माण में सबसे बड़े साधन के रूप में इस प्रश्न की ओर नयी दृष्टि से देखेंगे।

इस पुस्तक के साथ नवजीवन कार्यालय, अहमदाबाद से प्रकाशित 'गो-सेवा' पुस्तक भी पढ़नी चाहिए, क्योंकि उसमें पूज्य बापूजी व विनोबाजी के विचार संकलित हैं।

गोपुरी, वर्धा
कृष्णाष्टमी २१-८-'५४

—राधाकृष्ण बजाज

दो शब्द

[तीसरे संस्करण से]

"गो-सेवा की विचारधारा" की तीसरी आवृत्ति प्रकाशित हो रही है। उसके लिए दो शब्दों की माँग मुझसे की गयी है, तदनुसार लिख रहा हूँ।

सर्वोदय की आर्थिक योजना में गाय का क्या स्थान है, इसका (परिशिष्ट) अन्दाजा इस पुस्तक से पाठकों को हो जायगा। पुस्तक के दूसरे प्रकरण में सर्व-सेवा-संघ की तरफ से गो-सेवा संबंधी जो कार्य चल रहे हैं, उनका कुछ जिक्र है। उसमें पहला कार्य है, वर्धा शहर को गोपुरी बनाने का प्रयत्न। इसमें अब तक १२ साल बीत गये हैं। अगर इस कार्य को एक निश्चित मुद्दत के अन्दर हम पूरा कर सकें तो गो-सेवा का प्रचार-कार्य अनेक व्याख्यानों और पुस्तकों से जितना नहीं हो सकेगा, उतना उस एक प्रात्यक्षिक से होगा।

स्थानीय नस्ल-सुधार का जो कार्य किया गया है, वह निःसंशय देश में सर्वत्र अनुकरणीय है। जगह-जगह जो नस्लें हैं, उनका परित्याग करके हमारा काम नहीं हो सकता। इसलिए उनको अच्छी नस्ल में परिवर्तित करना ही हमारे लिए उपाय हो सकता है। वर्धा के इस प्रयोग को हम काफी सफल प्रयोग कह सकते हैं।

लेकिन अब एक कदम आगे जाकर नयी दिशा में काम करने की जरूरत है। एक ग्रामीण किसान के जीवन में आज की परिस्थिति के अनुसार गाय-बैलों की उन्नति किस तरह हो सकती है, इसका प्रयोग करना चाहिए। घर में जितना तेल खाया जायगा, उतनी ही खली का अंश गाय-बैल को मिलेगा। कपड़े के लिए जितना कपास बोया जायगा, उतने का ही बिनोला गाय के लिए मिल सकेगा। अनाज आदि जितना बोया

जायगा, उसीके डंठल, कड़बी वगैरह जानवरों को मिलेंगे। हरएक किसान कुटुंब के हिस्से में अच्छी पड़ती और बंजर जितनी जमीन जायगी उसमें से जितना हिस्सा गाय-बैलों के लिए रखना शक्य हो, उतने पर संतुष्ट रहना होगा और उसका पूर्ण लाभ उठाना होगा। यह एक सूचन मात्र किया है।

मेरा विश्वास है कि इस नयी दिशा में हम चिन्तन-पूर्वक प्रयोग करेंगे, तो हमें उसमें भी सफलता हासिल होगी और उससे गाय की घर-घर में प्रतिष्ठा होगी।

मधुवन (चंपारन)
११-७-१९५४

—विनोबा

अनुक्रम

गो-सेवा की विचारधारा

मानव के विकास-क्रम में अलौकिक : १ :

हिन्दूधर्म की मुख्य वस्तु है गोरक्षा। गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकास-क्रम में सबसे अलौकिक चीज मालूम हुई है। गाय का अर्थ मैं इन्सान से नीचे की सारी गूँगी दुनिया करता हूँ। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व द्वारा मनुष्य को सभी चेतन-सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव कराने का प्रयत्न है। मुझे तो यह भी स्पष्ट दीखता है कि गाय को ही यह देवभाव क्यों प्रदान किया गया होगा। हिन्दुस्तान में गाय ही मनुष्य का सबसे सच्चा साथी, सबसे बड़ा आधार थी। यही हिन्दुस्तान की एक कामधेनु थी। यह सिर्फ दूध ही देनेवाली न थी, बल्कि सारी खेती का आधार-स्तंभ थी।

गाय दयाधर्म की मूर्तिमंत कविता है। इस गरीब और शरीफ जानवर में हम केवल दया ही उमड़ती देखते हैं। यह लाखों-करोड़ों हिन्दुस्तानियों को पालनेवाली माता है। इस गाय की रक्षा करना, ईश्वर की सारी मूकसृष्टि की रक्षा करना है। जिस अज्ञात ऋषि या द्रष्टा ने गोपूजा चलायी, उसने गाय से शुरुआत की। इसके सिवा और कोई ध्येय नहीं हो सकता। इस पशु-सृष्टि की अर्ज बे-जबान होने से और भी कारगर है। गोरक्षा हिन्दूधर्म की दुनिया के लिए दी हुई बख्शीश है। और हिन्दूधर्म भी तभी तक रहेगा, जब तक गाय की रक्षा करनेवाले हिन्दू हैं।

इस गाय की रक्षा किस तरह हो ? रास्ता यही है कि गाय को बचाने के लिए हम खुद मरें। गाय को बचाने के लिए मनुष्य को मारना तो हिन्दूधर्म और अहिंसा-धर्म, दोनों से इनकार करने के बराबर है।

हिन्दुओं से तो अपनी तपस्या, अपनी आत्म-शुद्धि और आत्मत्याग के बल से गाय की रक्षा करने को कहा गया है। आजकल की गोरक्षा तो मुसलमानों के साथ आये दिन लड़ाई-झगड़ा करने और जहर पैदा करने में ही रह गयी है, हालाँकि असल में गोरक्षा का अर्थ यह है कि हम अपनी प्रेम-सेवा से मुसलमानों का हृदय जीत लें।

परन्तु हिन्दू खुद आज गोरक्षा कितनी समझते हैं ? कुछ समय हुआ, एक मुसलमान मित्र ने मुझे एक पुस्तक भेजी थी। उसमें गाय और उसकी संतान पर हम जो निर्दयता का बरताव करते हैं, उसका विस्तार से वर्णन किया गया था। उसका एक-एक बूँद दूध खींच लेने के लिए हम किस तरह उसका खून लेते हैं, भूखों मारकर हम कैसे उसे हाड़-पिंजर बना देते हैं, उसके बछड़ों की हम कैसी दुर्दशा करते हैं, किस तरह हम उसे पूरा खाने को भी नहीं देते, बैल पर हम कैसे-कैसे जुल्म ढाते हैं, हम किस तरह उसे खस्सी करते हैं, हम उसे चाबुक, आर और लकड़ी की मार मारते हैं और उस पर कितना बेहद भार लादते हैं, इन सब बातों का उस पुस्तक में वर्णन था। अगर गाय के जबान होती, तो वह हमारे अपराधों की ऐसी गवाही देती कि सारी दुनिया काँप उठती।

इन गूँगे जानवरों के साथ किये जानेवाले हर निर्दय व्यवहार से हम हिन्दूधर्म और ईश्वर का इनकार करते हैं। मैं नहीं मानता कि दुनिया के और किसी देश में पशुओं की हालत हिन्दुस्तान से

ज्यादा खराब होगी। इसमें हम अंग्रेज को दोष नहीं दे सकते। हमारे ढोरों की दुर्दशा के लिए अपनी गरीबी का राग भी हम नहीं गा सकते। यह तो हमारी निर्दय लापरवाही के सिवा और किसी भी बात की सूचक नहीं है। हालाँकि हमारे पिंजरा-पोल हमारी दया-वृत्ति पर खड़ी हुई संस्थाएँ हैं, तो भी ये उस वृत्ति पर निहायत बेहूदा तरीके पर अमल करनेवाली संस्थाएँ मात्र हैं। वे नमूने की गोशालाओं या डेरियों और ज्वलंत राष्ट्रीय संस्थाओं के रूप में चलने के बजाय केवल लूले-लंगड़े ढोर रखने के धर्मादा खाते बन गये हैं।

हिन्दुओं की परीक्षा तिलक करने, स्वरशुद्ध मंत्र पढ़ने, तीर्थ-यात्राएँ करने या जात-बिरादरी के छोटे-से-छोटे नियमों को कट्टरता से पालने से नहीं होगी; बल्कि गाय को बचाने की शक्ति से ही होगी। आज तो गोरक्षा धर्म का दावा करनेवाले हम गाय और उसके वंश को गुलाम बनाकर खुद गुलाम बने हैं।

ता० ६-१०-'२१.

गोरक्षा का धर्म : २ :

मैं जैसे-जैसे गोरक्षा के प्रश्न का अध्ययन करता हूँ, वैसे-वैसे उसका महत्त्व मेरी समझ में आ रहा है। हिन्दुस्तान में गोरक्षा का प्रश्न दिन-दिन गंभीर होता जायगा, क्योंकि इसमें देश की आर्थिक स्थिति का सवाल छिपा हुआ है। मैं मानता हूँ कि हर धर्म में आर्थिक और राजनैतिक विषय रहते हैं। जो धर्म शुद्ध अर्थ (धन) का विरोधी है, वह धर्म नहीं। जो धर्म शुद्ध राजनीति का विरोधी है, वह धर्म नहीं। धर्मरहित धन त्याज्य

है। धर्म के बिना राजसत्ता राक्षसी है। अर्थादि से अलग धर्म नाम की कोई चीज नहीं। व्यक्ति या समष्टि, सब धर्म से जीते हैं, अधर्म से नष्ट होते हैं। सत्य के सहारे किया हुआ अर्थसंग्रह यानी व्यापार जनता का पोषण करता है। सत्यासत्य के विचार से रहित व्यापार उसका नाश करता है। झूठ और छल-कपट से होनेवाला लाभ क्षणिक है। अनेक दृष्टांतों से बताया जा सकता है कि उससे अन्त में हानि ही हुई है।

गोरक्षा के धर्म की जाँच करते समय हमें अर्थ (धन) का विचार करना ही पड़ेगा। अगर गोरक्षा शुद्ध धन की विरोधी हो, तो उसे छोड़े बिना काम नहीं चलेगा। इतना ही नहीं, हम रक्षा करना चाहेंगे, तो भी रक्षा नहीं हो सकेगी।

हमने गोरक्षा में छिपे हुए अर्थ-लाभ का विचार ही नहीं किया। इससे जिस देश के असंख्य लोग गोरक्षा को अपना धर्म मानते हैं, उसी देश में गाय और उसका वंश भूखों मरता है, उसकी हड्डियाँ इस तरह निकली होती हैं कि सबकी सब गिनी जा सकती हैं; और वह केवल हिन्दुओं की लापरवाही से कत्ल होती हैं। गोरक्षा में हिन्दुस्तान की खेती की हस्ती का समावेश होता है। अगर हिन्दू मात्र गोरक्षा का अर्थशास्त्र समझ लें, तो गोहत्या बंद हो जाय। धर्म के नाम पर होनेवाली हत्या से हिन्दुओं की सिर्फ मूर्खता के कारण होनेवाली हत्या सौगुनी ज्यादा होगी। जब तक हिन्दू खुद गाय की रक्षा करने का शास्त्र नहीं सीखेंगे, तब तक करोड़ों रुपया देकर भी गाय बचेगी नहीं।

गुजरात के वैश्य, भाटिया और मारवाड़ी गोरक्षा का काम करने का प्रयत्न करते हैं। वे इसके पीछे अपार धन खर्च करते हैं। उनमें भी सबसे अधिक साहस करनेवाले मारवाड़ी हैं। हिन्दु-

स्तान में अधिक-से-अधिक गोशालाएँ चलानेवाले मारवाड़ी व्यापारी हैं। इसमें वे खुशी से लाखों रुपया देते हैं। इसीलिए मैंने कहा है कि मारवाड़ियों के विना गोरक्षा का प्रश्न हल नहीं हो सकता। मैंने बहुत-सी गोशालाएँ देखी हैं, मगर एक के विषय में भी मैं यह नहीं कह सकता कि वह आदर्श गोशाला है।

ये विचार कलकत्ता में लिलुआ की गोशाला देखकर पैदा हुए हैं। इस गोशाला पर हर साल ढाई लाख रुपये खर्च होते हैं। मगर इसकी आमदनी नहीं के बराबर है। जिस गोशाला को दान में ढाई लाख रुपये प्रतिवर्ष मिलते हों, उसके द्वारा कम-से-कम १०,००० नये जानवर हर साल बचने चाहिए। इस संस्था में तो इतने जानवर पलते भी नहीं हैं। इसमें संचालकों का दोष या दगा नहीं। मुझे जो मंत्री यह संस्था दिखाने ले गये, वे यथाशक्ति सेवा कर रहे हैं। दोष पद्धति का है। ऐसी संस्थाएँ चलाने के ज्ञान का अभाव है। इससे इन संस्थाओं का पूरा लाभ जनता को नहीं मिलता।

धर्म के महकमे में व्यवहार-कुशलता की जरूरत नहीं मानी जाती। इस काम में संचालक खुद रुपया न चुराये, तो काम ठीक चलता हुआ मान लिया जाता है। जिस व्यापारी-काम में ढाई लाख रुपया सालाना पूँजी आती हो, उसमें अच्छे-से-अच्छे वैतनिक कर्मचारी रखे जाते हैं। और यहाँ घर के धंधे में डूबे हुए व्यापारी सेवाभाव से थोड़ा-सा समय दे देते हैं। समय देनेवालों को धन्यवाद ही मिलना चाहिए, मगर उससे गोमाता की रक्षा नहीं होती। गोमाता की रक्षा के लिए तो कार्यदक्ष आदमियों का एक-एक क्षण इसी काम में लगना चाहिए। यह या तो केवल ज्ञानवान, तपस्वी और त्यागी कर सकता है या कार्यकुशल भोगी अच्छी तनख्वाह लेकर कर सकता है। धर्मादा करनेवाले भले

ही व्यवहार-कुशल न हों, परन्तु धर्मादे का काम चलानेवालों में तो व्यापारी से भी अधिक कुशलता, उद्यम वगैरह होने चाहिए। जो नियम व्यापारी पर लागू होते हैं, वे सब नीति-नियम धर्मादे के काम पर लागू होने चाहिए। गोशालाएँ व्यापार के लिए चलती हों, तो उनमें तत्संबंधी शास्त्रीय ज्ञानवाले आदमी काम करनेवाले होने चाहिए, जो नित नये प्रयोग करके अधिक-से-अधिक गायों को बचायें, गोशाला में नस्ल-सुधार, दूध की शुद्धता और दूध की वृद्धि आदि के अनेक प्रयोग करें। यह स्पष्ट है कि नस्ल-सुधार का ज्ञान जैसा गोशाला द्वारा मिल सकता है, वैसा और कहीं नहीं मिल सकता। लेकिन गोशाला धर्मादे का काम है, इस कारण वह किसी भी तरह चल सकती है; उसके बारे में कोई फिक्र नहीं करता। जैसे वेद की पाठशाला में वेद का कम-से-कम ज्ञान मिले तो वेद की अवज्ञा होती है, वैसा ही हाल आज गोशालाओं का है। ● ● ●

ता० ६-६-'२५

गोरक्षा की शर्तें : ३ :

मुझे इस बात का रह-रहकर अफसोस होता है कि मैंने गोरक्षा का काम अपने जीवन के आखिरी वर्षों में हाथ में लिया। लेकिन जहाँ-जहाँ भार माँगकर न लिये गये हों, बल्कि अपने-आप सामने आकर इस तरह खड़े हो जाते हों कि उन्हें लौटाया नहीं जा सके और सिर पर ही रखना पड़े, वहाँ दुःख भी क्या माना जाय? गोरक्षा के बारे में मेरा यही हाल हुआ है।

कुछ दिन पहले घाटकोपर में भाई नगीनदासजी की कर्तव्य-

परायण व्यवस्था में चलनेवाले जीवदया-खाते को देखने का मुझे अवसर मिला। बम्बई में इस वक्त आवारा फिरनेवाले और अनेक रोग पैदा करनेवाले दुधारू ढोरों के खानगी तबेले बीच बस्ती में हैं, जहाँ ढोरों को फिरने-डोलने की भी जगह नहीं होती और जहाँ से अच्छे-से-अच्छे पशु असमय ही कसाईखाने चले जाते हैं। ऐसी स्थिति में अन्त में सम्पूर्ण परिवर्तन कर डालने के प्रशंसनीय हेतु से यह खाता दुग्धालय का प्रयोग कर रहा है। परन्तु इस खाते के अच्छी तरह चलते हुए भी उसमें कितने ही मूलभूत दोष हैं, जिनकी तरफ मुझे खाते का ध्यान खींचना पड़ा। ऐसा करते हुए मुझे गोरक्षा कार्य की कितनी ही शर्तें अंकित करनी पड़ीं। इन्हें फिर एक बार यहाँ रख देना अप्रासंगिक न होगा :

(१) ऐसी हर संस्था बस्ती से खूब दूर खुले में होनी चाहिए, जहाँ घास हो और पशुओं को घूमने के लिए बहुत यानी हजारों एकड़ जमीन हो। अगर सारी गोशालाएँ मेरे हाथ में हों, तो गायों की आयात के काम के लिए जितनी उपयोगी हों उतनी रहने देकर बाकी सभी गोशालाएँ अच्छी कीमत पर बेच डालूँ और पड़ोस में ऊपर कहे अनुसार खुली जमीनें लूँ।

(२) हर गोशाला को नमूने का दुग्धालय और नमूने का चर्मालय बना डालना चाहिए। एक-एक मरे हुए ढोर को फेंक देने के बजाय रखना चाहिए और उस पर सभी शास्त्रीय क्रियाएँ करके उसके चमड़े, हड्डियों और अँतड़ियों वगैरह सब चीजों का अधिक-से-अधिक उपयोग कर लेना चाहिए। मैं तो कत्ल होनेवाले जानवरों के चमड़े या दूसरी चीजों के मुकाबले में मरे हुए जानवरों के चमड़े को पवित्र और खास तौर पर काम में लेने लायक समझता हूँ। कत्ल होनेवाले जानवरों के हाड़-चाम से

बनी हुई चीजें मनुष्य को, कम-से-कम हिन्दुओं को तो अग्राह्य ही मानना चाहिए।

(३) बहुत-सी गोशालाओं में गोबर, मूत्र वगैरह फेंक दिया जाता है। इस बिगाड़ को मैं निरा अपराध ही मानता हूँ।

(४) हर गोशाला की व्यवस्था इस विषय का शास्त्रीय ज्ञान रखनेवाले आदमियों की देखरेख में और उनकी सलाह से होनी चाहिए।

(५) हर गोशाला स्वावलम्बी होनी चाहिए और उपयुक्त व्यवस्था रहे तो ऐसा होगा ही। दानधर्मादि का उपयोग गोशालाओं के विकास में होना चाहिए। इन संस्थाओं को कमाई करनेवाले विभाग न बनने देना चाहिए। लेकिन कमाई होती हो, तो उसे लूले-लंगड़े, कमजोर और बूढ़े ढोरों को खरीद लेने में और कसाईखाने जानेवाले सारे पशुओं को खुले बाजार में खरीद लेने में खर्च कर डालना चाहिए। यह योजना गोरक्षा के मूल में है।

(६) अब अगर हमारी गोशालाएँ भैंस, बकरियाँ वगैरह पालने लगें, तो ऊपर का हेतु पूरा होना मुश्किल हो जाय। मैं तो बहुत चाहता हूँ कि स्थिति दूसरी हो, मगर जहाँ तक मैं देख सकता हूँ, वहाँ तक तो सारे हिन्दुस्तान के शाकाहारी बने बिना बकरों और मेढों को कसाई की छुरी से बचाया नहीं जा सकता। और भैंस तो आसानी से बच जाय, अगर हम भैंस के दूध का स्वाद भूलकर धर्मबुद्धि के साथ उसे पीना छोड़ दें और गाय का ही दूध पीना पसन्द करें।

परन्तु दुःख की बात है कि आज तो गाय का दूध छोड़कर भैंस का दूध पीने की प्रथा सर्वमान्य हो चली है। वैद्य-डॉक्टर तो एक स्वर से घोषणा करते हैं कि गाय के दूध में भैंस के दूध से

ज्यादा गुण हैं और दुग्धालय-शास्त्रियों का कहना है कि गाय का दूध उपयुक्त व्यवस्था करने से आज से ज्यादा कसदार बनाया जा सकता है। मैं मानता हूँ कि भैंस और गाय, दोनों को हम नहीं बचा सकते। भैंस पालना छोड़ देंगे, तभी गाय बच सकेगी। खेतीबारी के काम में किसी बड़े पैमाने पर भैंसा उपयोगी नहीं। और भैंस को आगे से आश्रय देना छोड़ दें, तो भी आज उसकी जितनी संतान है वह सहज में बच सकती है। भैंस रखना—बल्कि गाय रखना भी—कोई धर्म-ऋण नहीं है। हम तो अपने उपयोग के लिए पालते हैं। लेकिन आज तो भैंस को पालने से गाय और भैंस, दोनों का श्राप लेना है। दयाधर्मियों को जानना चाहिए कि हिन्दू ग्वाला दूध पीते पाड़े को निष्ठुरता से मार डालता है, क्योंकि उसे पालना भारी पड़ता है। गाय और उसकी सन्तान को बचाने की खातिर इसके सिवा दूसरा उपाय नहीं कि हिन्दू गाय और उससे पैदा होनेवाली चीजों के व्यापार का मुनाफा छोड़ दें। दयाधर्मी अर्थशास्त्र अर्थात् जिसमें आमद-खर्च बराबर रहते हों, ऐसे अर्थशास्त्र के साथ धर्म मेल खाता हो, तो ही वह धर्म सच्चा गिना जायगा। ऐसा अर्थशास्त्र गाय के और सिर्फ गाय के ही साथ निभ सकता है, जिसमें कुछ वर्षों तक धर्मपरायण हिन्दुओं की दान-धर्म की रकमें मदद देंगी।

हमें नहीं भूलना चाहिए कि गोरक्षा की हमारी यह हलचल सारी गोमांसभक्षक दुनिया के सामने दयाधर्म की दिशा में एक महान् प्रयत्न है। इसलिए जब तक सारी दुनिया अधिकांश में शाकाहारी न बने, तब तक तो मुझे लगता है कि अपनी इस हलचल के लिए जो मर्यादाएँ मैंने ऊपर बताने का प्रयत्न किया है, उनसे अधिक हम कुछ नहीं कर सकेंगे। हम इतना कर सकें, तो भावी सन्तान के लिए एक बहुत बड़े प्रयत्न का मार्ग खोल

देंगे। इन मर्यादाओं को न मानना तो भैंस और दूसरे जानवरों के साथ-साथ गाय को भी सदा के लिए कसाई के हाथों सौंप देने के बराबर है। ○ ○ ○

ता० ३–४–'२७

गाय : हमारा सांस्कृतिक प्रतीक : ४ :

आजकल जिस तरह गोसेवा का कार्य हो रहा है, दूसरी संस्थाएँ जो कुछ कर रही हैं, उसमें और गोसेवा के काम में बड़ा अंतर है। वह काम जनता के सामने नहीं आ रहा था। जमनालालजी के इसमें पड़ जाने से वह सबकी नजर में आ गया है। कल जब मैंने पेरिन बहन को सम्मेलन में आने को कहा तो वह राजी न हुई। वह बम्बई की एक बड़ी काम करनेवाली बहन है। वह बोली, 'मैं तो हिन्दुओं की गोसेवा का दृश्य भूलेश्वर में रोज देखती हूँ। वह गोसेवा नहीं, वहम है। मैं तो तब चलूँगी जब हिन्दू बुद्धि से काम लेंगे और सचमुच गाय के लिए कुछ करके दिखावेंगे।' उसके कथन में बहुत सत्य है। गोरक्षा का दावा करनेवालों को गोशाला और गोवंश की हालत का ज्ञान नहीं है। अपने को परम्परा से गोभक्त माननेवाले लोग एक तरफ गोसेवा के नाम पर पैसा देते हैं और दूसरी तरफ व्यापार में बैलों के साथ निर्दयता करते हैं। ये हमारे चौंडे महाराज हैं। बरसों से गोसेवा का काम करते हैं। हमारे विचार अलग-अलग हैं। लेकिन समझाने पर वे कुछ मान भी लेते हैं, फिर भी वे कहते हैं कि जनता नहीं मानती। वे गायों को कसाई से छुड़ाते हैं। लेकिन इन तरीकों से काम नहीं चलेगा। मैं किसीकी टीका नहीं करता।

सिर्फ यह बताना चाहता हूँ कि इसमें असली उपाय के प्रति अज्ञान भरा पड़ा है। यही बात मैंने पिंजरापोलों में भी देखी। वहाँ भी विवेक, मर्यादा और ज्ञान की कमी पायी।

मुसलमानों से गोकुशी छुड़ाने के लिए उनका विरोध किया जाता है और गाय को बचाने में इन्सानों का खून तक हो जाता है। लेकिन मैं बार-बार कहता हूँ कि मुसलमानों से लड़कर गाय नहीं बच सकती। इसमें तो और भी ज्यादा गाय मारी जावेगी।

असली दोष तो हिंदुओं का है। घी का सारा व्यापार हिंदुओं के हाथ में है। लेकिन क्या घी, दूध शुद्ध मिलता है? दूध में मिलावट की जाती है और जो पानी मिलाया जाता है वह भी स्वच्छ नहीं होता। घी में दूसरे पशुओं का घी और वेजीटेबल घी मिलाया जाता है। फूँके से दूध निकाला जाता है। बाजार में जो घी बेचा जाता है, उसे एक तरह से जहर कहें तो ज्यादा सही है। न्यूजीलैंड, आस्ट्रेलिया या डैनमार्क से विश्वस्त रूप से गाय का शुद्ध मक्खन मिल सकता है। लेकिन हिन्दुस्तान में जो भी मिलता है, उसकी शुद्धता की कोई गारंटी नहीं। वर्धा में भी जहाँ जमनालालजी और हम इतने सालों से पड़े हैं, एक भी दूकान ऐसी नहीं है जहाँ गाय का सेर भर भी घी शुद्ध मिल सकता हो।

हमारे लिए तो प्राणीमात्र की रक्षा करना धर्म है। लेकिन जब तक सबसे उपयोगी पशु को हम सच्चे अर्थ में नहीं बचा लेते, तब तक दूसरे जानवरों की रक्षा नहीं हो सकती। हमने तो गाय की उपेक्षा करके गाय और भैंस, दोनों को मौत के दरवाजे पहुँचा दिया। इसलिए मैं कहता हूँ कि उपयुक्त उपाय करके हम सचमुच गाय को बचा लेंगे व दूसरे जानवर भी बच जायँगे। लेकिन यह तभी हो सकता है जब हमें इसका सच्चा

विज्ञान और अर्थशास्त्र मालूम होगा। तभी हम पेरिन बहन जैसों की इस काम में दिलचस्पी पैदा कर सकेंगे। मुझे यह देखकर आश्चर्य होता है कि हम भैंस के घी-दूध का कितना पक्षपात करते हैं! असल में हम निकट का स्वार्थ देखते हैं, दूर का लाभ नहीं सोचते। नहीं तो यह साफ है कि अन्त में तो गाय ही ज्यादा उपयोगी है। गाय के घी और मक्खन में एक खास तरह का पीला रंग होता है, जिसमें भैंस के मक्खन से कहीं अधिक क्रोटीन यानी विटामिन 'ए' रहता है। इसमें एक खास तरह का स्वाद भी है। मुझसे मिलने को आनेवाले विदेशी यात्री सेवाग्राम में गाय का शुद्ध दूध पीकर लट्टू हो जाते हैं। और यूरोप में तो भैंस का घी-मक्खन कोई जानता ही नहीं। हिन्दुस्तान ही ऐसा देश है जहाँ भैंस का घी-दूध इतना पसन्द किया जाता है। इसीसे गाय की बरबादी हुई है और इसलिए मैं कहता हूँ कि हम सिर्फ गाय पर ही जोर न देंगे तो वह नहीं बच सकती। यह बड़े दुख की बात है कि सब गाय और भैंसें मिलकर हम चालीस करोड़ लोगों को पूरा दूध नहीं दे सकतीं। हमें यह विश्वास होना चाहिए कि गाय का महत्त्व इसलिए है कि वही काफी दूध और खेती और बारबरदारी के लिए जानवर देनेवाली है। वह मरने पर भी मूल्यवान है, यदि उसके चमड़े, हड्डी, मांस और अँतड़ियों का भी हम उपयोग करते हैं। लेकिन चौंडे महाराज को आम लोगों को यह समझाने में शंका है कि मरी हुई गाय का चमड़ा पवित्र है। पूछता हूँ कि पवित्र क्यों नहीं है? मैं तो गाय के मुर्दार जूते पहनकर घर के भीतर जाने में भी संकोच न करूँ यदि वे जूते साफ हों। मुझे ऐसे जूते पहनकर भोजन करने में भी परहेज न रहेगा। यह सब मुझे यह सिद्ध करने के लिए कहना पड़ता

है कि गाय हमारे लिए मुनाफे की चीज है, घाटे का सौदा नहीं। आज बहुत जगह या तो मुर्दा गाय को गाड़ देते हैं या उसे कौड़ियों में बेच डालते हैं। यह कितने अज्ञान की बात है! उधर मुर्दार मांस खानेवाले हरिजनों से हम घृणा करते हैं; लेकिन यह भूल जाते हैं कि इसमें दोष हमारा ही है। अगर हम मुर्दार चमड़े को अच्छी तरह कमायें, मुर्दार मांस की खाद का महत्त्व जानें और हड्डी और अँतड़ियों का उपयोग कर सकें, जैसा कि नालवाड़ी में प्रत्यक्ष होता है, तो फिर मुर्दार मांस खाने का सवाल ही नहीं रहता।

पिंजरापोलों का प्रश्न कठिन है, देश भर में उनकी संख्या काफी है। शायद हर बड़े कस्बे में, एक-दो धर्मार्थ गोशाला होंगी, उनके पास रुपया भी बहुत जमा है। लेकिन बहुतों की व्यवस्था बिगड़ी है। जब से मैं दक्षिण अफ्रीका से हिन्दुस्तान आया हूँ, तभी से मैंने पिंजरापोलों के सुधार की रट लगा रखी है। लेकिन जब तक हम यह न समझ लेंगे कि इन संस्थाओं का असली कार्य क्या है, तब तक उनमें देश का रुपया जिस तरह बर्बाद होता रहा है, आगे भी होता रहेगा। उनका असली काम उन सूखे, बूढ़े और अपाहिज गाय-बैलों का पालन करना है जिनकी देखभाल मालिक अलग-अलग नहीं कर सकते। शहरों में तो उनका पालन दरअसल असंभव है। इन संस्थाओं का काम दूध का व्यवसाय करना नहीं है। हाँ, वे चाहें तो एक अलग दुग्धालय या गोशाला-विभाग रख सकती हैं। लेकिन उनका मुख्य धर्म यही है कि बूढ़े और अपंग ढोरों का पालन करें और चर्मालय के लिए कच्चा माल भेजें। हर पिंजरा-प्रोल के साथ एक-एक सुसज्जित चर्मालय होना चाहिए। उन्हें उत्तम सांड भी रखने चाहिए जो जनता के भी काम आ सकें।

शेष सांड और बछड़ों को खस्सी करके बैल बनाने के लिए उन संस्थाओं के पास अहिंसक और वैज्ञानिक साधन होने चाहिए। खेती और गोपालन की शिक्षा का भी प्रबन्ध उनमें होना चाहिए। हमारे खेती और गोपालन की उच्च शिक्षा पाये हुए नवजवानों के लिए पिंजरापोलों में सेवा का विशाल क्षेत्र मौजूद है। हर पिंजरापोल में इस तरह का एक-एक विशारद रहे। उसे अनुभव और तालीम भी मिलेगी। ये सब पिंजरापोल हमारे संघ के साथ संबद्ध होने चाहिए और इस केन्द्रीय संस्था की तरफ से हर पिंजरापोल को शास्त्रीय सलाह मिलनी चाहिए। साथ ही संघ हर जगह से जानकारी प्राप्त करके शाखाओं को उनका लाभ पहुँचाये।

संघ ने अपने सदस्यों के लिए यह शर्त रखी है कि वे गाय का ही घी-दूध खायँ और गाय-बैल का मुर्दार चमड़ा ही काम में लें। इस नियम के पालन में बड़ी कठिनाई यह बतायी जाती है कि जिनके यहाँ हम मेहमान बनते हैं, उनको बड़ी दिक्कत और परेशानी होती है। लेकिन इन कठिनाइयों को बहुत महत्त्व नहीं देना चाहिए। आप भी काका साहब की तरह जहाँ जायँ अपने साथ गाय का घी ले जा सकते हैं। उसके बिना भी काम चला सकते हैं। यह तो प्रचार का अच्छा साधन है। इससे आप अपने यजमान का भी विचार पलट सकते हैं। परन्तु धर्म का पालन सदा कष्टदायी तो होता ही है, उससे भागने में न बहादुरी है, न जीवदया।

अन्त में मैं कहूँगा कि आप सब लोग जमनालालजी को इस काम में मदद दीजिये। खास तौर पर पिंजरापोलोंवाला काम टेढ़ी खीर है। आपकी मदद के बिना जमनालालजी की हजार कोशिशें भी पार नहीं पड़ेंगी। आज तो गाय मृत्यु के

किनारे खड़ी है और मुझे भी यकीन नहीं है कि अन्त में हमारे प्रयत्न इसे बचा सकेंगे। लेकिन यह नष्ट हो गयी तो उसके साथ ही हम भी यानी हमारी सभ्यता भी नष्ट हो जायगी। मेरा मतलब हमारी अहिंसा-प्रधान और ग्रामीण संस्कृति से है। इसलिए हमें दो में से एक रास्ता चुनना पड़ेगा। या तो हमें हिंसक बनकर घाटा देनेवाले सब पशुओं को मार डालना होगा और उस हालत में यूरोप की तरह हमें दूध और मांस के लिए पशु-पालन करना होगा। लेकिन हमारी संस्कृति मूल में ही दूसरी तरह की है। हमारा जीवन हमारे जानवरों के साथ ओतप्रोत है। हमारे अधिकांश देहाती अपने जानवरों के साथ ही रहते हैं और अक्सर एक ही घर में रात बिताते हैं। दोनों साथ जीते हैं और साथ ही भूखों मरते हैं। बहुधा मालिक अपने दुबले ढोर को बहुत कम खिलाकर उसका शोषण करता है, उसके साथ मारपीट करता और निर्दयता से काम लेता है। लेकिन हमारा काम करने का ढंग सुधर जाय तो हम दोनों बच सकते हैं, नहीं तो हम दोनों को एक ही साथ डूबना है और न्याय भी यही है कि साथ ही डूबें और साथ ही तरें।

हमारे सामने तो हल करने का प्रश्न आज अपनी भूख और दरिद्रता का है। लेकिन मैंने आज सिर्फ अपने ढोरों की भूख और दरिद्रता का सवाल ही सामने रखा है। हमारे ऋषियों ने हमें रामबाण उपाय बता दिया है। वे कहते हैं, "गाय की रक्षा करो, सबकी रक्षा हो जायगी।" ऋषि ज्ञान की कुंजी खोल गये हैं। उसे हमें बढ़ाना चाहिए, बरबाद नहीं करना चाहिए। हमने विशेषज्ञों को बुलाया है और हम उनकी सलाह से पूरा लाभ उठाने की कोशिश करेंगे। हम साधारण लोग जो कहते हैं वह निर्णायक नहीं है। हम अपने विचारों को विशेषज्ञों के ज्ञान

और अनुभव की कसौटी पर कसेंगे और उसी के प्रकाश में अपना रास्ता बनायेंगे। ० ० ०

ता० १-२-'४२

भावना व नीति-दर्शक वचन : ५ :

१. गोसेवा-संघ का काम बहुत ही बड़ा है। श्री जमनालाल-जी ने गोपुरी का छोटा-सा दायरा पसन्द करके यहीं अपना काम शुरू किया। उसको हमें आगे बढ़ाना है।

२. मैं मानता हूँ कि जितनी आसानी से हमें पानी मिलता है, उतनी ही आसानी से दूध भी मिलना चाहिए।

३. वर्धा का दृष्टांत देकर मैं सबसे कहता हूँ कि हरएक अपनी शक्ति के अनुसार हृष्ट-पुष्ट और अच्छी गायें बनाये।

४. सिर्फ गाय का ही घी-दूध आदि और मृत पशु की चमड़ी काम में लाने की शर्तें हरएक सदस्य पर बंधनकारक होनी चाहिए।

५. यदि हम गोरक्षा नहीं करेंगे, तो गाय और भैंस दोनों का नाश होनेवाला है।

६. गोसेवक बनने के लिए पवित्र आदमी की जरूरत है। सिर्फ काबिल आदमी यह नहीं कर सकेगा।

७. जब तक गोवध होता है, तब तक मुझे ऐसा लगता है कि मेरा खुद का ही वध हो रहा है। मेरे सारे प्रयत्न गोवध रोकने के लिए ही हैं।

८. गाय को बचाने के लिए जो अपने प्राण देने को तैयार नहीं, वह हिंदू नहीं। गोरक्षा की भावना हिन्दूधर्म की मानव-जाति के लिए एक बड़ी भेट है।

९. मेरी गहरी-से-गहरी दो मनोकामनाएँ हैं :—एक अस्पृश्यता निवारण और दूसरी गोसेवा। इनकी सिद्धि में ही मुझे मोक्ष दिखाई देता है।

१०. जैसे दुबले हमारे ढोर, वैसे ही हम। जहाँ ढोर भूखों मरते हैं, वहाँ ३ करोड़ आदमी भूखों मरें, तो आश्चर्य ही क्या?

११. मैं नहीं मानता कि आज पिंजरापोल गाय या उसके वंश की रक्षा करते हैं। पिंजरापोलों में मैं आदर्श गाय-बैल देखने की आशा रखता हूँ। वे शहरों के बीच न होकर बड़े-बड़े खेतों पर होने चाहिए।

१२. गोरक्षा मुझे मनुष्य के सारे विकासक्रम में सबसे अलौकिक चीज मालूम हुई है। गाय का अर्थ इन्सान के नीचे की सारी मूक दुनिया करता हूँ। इसमें गाय के बहाने इस तत्त्व द्वारा मनुष्य को सभी चेतन सृष्टि के साथ आत्मीयता अनुभव कराने का प्रयत्न है।

• • •

—मो० क० गांधी

गो-सेवा कैसे हो ? : ६ :

संस्कृत में 'गोसेवा' शब्द हमको शायद ही मिले। वहाँ 'गोरक्षा' शब्द का प्रयोग है। इसलिए हम सब लोग वह शब्द जानते हैं। लेकिन जानकर भी, हेतुपूर्वक, उसको छोड़ा है, और 'गोसेवा' शब्द अधिक नम्र समझकर चुन लिया है। यानी हम अपने में गोरक्षा की सामर्थ्य नहीं पाते, इसलिए गोसेवा से संतोष मान लिया है। अर्थात् दयाभाव से हमसे जितनी हो सकेगी, उतनी हम गाय की सेवा करेंगे और भगवान् की कृपा से जब हममें ताकत आ जायगी, तब फिर हम गोरक्षा करेंगे।

लेकिन जब हम 'गोसेवा' कहते हैं, तो यह पूछा जायगा कि "आप लोग गाय की क्या सेवा करना चाहते हैं ? अगर आप गाय का दूध और घी बढ़ाना चाहते हैं, और अच्छे बैल पैदा करना चाहते हैं, तो इसमें कौन सी 'गोसेवा' है ? इसमें तो आप लोग अपनी खुद की ही सेवा करना चाहते हैं। अंग्रेज लोगों ने 'पब्लिक सर्विस' शब्द निकाला है, वैसी ही आपकी यह गोसेवा हुई !"—ऐसा आक्षेप हो सकता है। इसके जवाब में कुछ कहना ठीक होगा।

हम लोग अपनी मर्यादा समझते नहीं। इसीलिए यह सवाल उठ सकता है। 'सेवा' और 'उपयोग' के बीच कोई आवश्यक विरोध नहीं है, यह समझने की जरूरत है। हम जिस प्राणी का

उपयोग नहीं करते, उसकी सेवा करने की ताकत हममें नहीं होती। यह हमारी मर्यादा है। उसमें स्वार्थ का कोई मुद्दा नहीं है। एक-दूसरे की सेवा करने का यही एक रास्ता हमारे लिए ईश्वर ने खुला रखा है। नहीं तो, जैसा कि बापू ने बताया, पिंजरापोलों में जो होता है, वही सारे समाज में होता रहेगा। आज भी हम यही हाल देखते हैं। पत्ती को खिलाते हैं और आदमी को भूखा रखते हैं। इस तरह दया या सेवा तो नहीं होगी, बल्कि निर्दयता या असेवा होगी।

ईश्वर के अनन्त गुण हैं। उनमें से हमें अनेक गुणों का अनुकरण करना है। लेकिन ईश्वर का जो विशेष गुण है, उसका अगर हम अनुकरण करेंगे, तो वह अहंकार होगा। ईश्वर के और सब गुणों का अनुकरण शक्य है, परन्तु उसके विशेष गुण का, यानी उसके ऐश्वर्य का, अनुकरण शक्य नहीं। वह सृष्टि का पालन करता है और संहार भी करता है। इसमें हम उसका अनुकरण नहीं कर सकते। हम किसीका पालन या रक्षण नहीं कर सकते। बहुत हुआ तो चींटियों के लिए शक्कर डाल देंगे। चींटियाँ वहाँ इकट्ठी हो जायँगी। और अगर संयोग से वहाँ पर एकाध बैल आ जाय, तो उसके पैर के नीचे वे खत्म हो जायँगी। जब ऐसी बात होगी, तो उसकी जिम्मेवारी मैं कैसे उठाऊँगा ? मैं तो कह दूँगा कि यह तो ईश्वर की करतूत है !

यहाँ मुझे एक घटना याद आती है। एक थी बुढ़िया। उसका एक बेटा था। बेटा उसकी बात मानता नहीं था। इसलिए वह बहुत दुखी रहती थी। जब उसके पास मैं पहुँचा, तो वह कहने लगी—"मैंने इसको पाला-पोसा, लेकिन यह मेरी मानता ही नहीं।"

मैंने उससे पूछा—"क्या तेरा यह अकेला ही लड़का है ?"

उसने कहा—"हाँ, तीन-चार और थे; वे सब मर गये।"

तब मैंने अपने जंगली ढंग से सीधा सवाल पूछा—"माजी, तुमने अपने तीन-चार लड़कों को क्यों मार डाला ?"

आप समझ सकते हैं कि मेरे इस जंगली सवाल से उसके दिल पर कितनी चोट लगी होगी ! थोड़ी देर के लिए वह सहम गयी और बाद में कहने लगी—"मैं क्या करूँ ? भगवान् ने चाहा सो हुआ ।" तब मैं उससे पूछता हूँ—"अगर तुम्हारे तीन लड़कों को भगवान् ने मार डाला है, तो तुम्हारा यह जो चौथा बेटा है, उसको पाला-पोसा किसने ? पाला-पोसा तो तुमने और मार डाला भगवान् ने, यह कैसे हो सकता है ? या तो दोनों जिम्मेवारियाँ उठाओ या दोनों को छोड़ दो ।"

जिस प्राणी का हमारे लिए उपयोग नहीं है, उसकी सेवा हमसे नहीं हो सकती । गो-सेवा का रास्ता सीधा है । गाय का हमें ज्यादा-से-ज्यादा उपयोग तो है ही । वह करने की कोशिश करेंगे और उसके साथ-साथ उसकी सेवा, अधिक-से-अधिक जितनी हो सकती है, करेंगे; जैसी कि हम अपने बच्चों की सेवा करते हैं । यही उसका सीधा अर्थ होता है ।

गोसेवा का प्रथम पाठ हमें वैदिक ऋषि-मुनियों ने सिखाया और समझाया है । कुछ लोगों का कहना है कि गोसेवा का पाठ पढ़ाकर ऋषियों ने हममें अनुचित पूजा के भाव पैदा किये हैं । ऐसी पशु-पूजा वैज्ञानिक नहीं है । पर वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है । जिस तरह हम उपयोग की दृष्टि से विचार करते हैं, उसी तरह सीधे उपयोग की दृष्टि से ऋषि-मुनियों ने भी विचार किया है । उसी दृष्टि से उन्होंने बतलाया है कि हिन्दुस्तान के लिए गोसेवा मुफीद है । इसलिए वही धर्म हो सकता है । तब हमारा यह

कर्तव्य हो जाता है कि हम गाय का जितना हो सकता हो, उतना उपयोग करें। वेद का वचन है :

'सहस्रधारा पयसा मही गौः।'

'ऐसी गाय जिससे कि दूध की हजार धाराएँ रोज पैदा होती हैं।' आप समझ सकते हैं कि दूध की एक धारा कितनी होती है। हिसाब करने पर मालूम होगा कि वैदिक गाय का दूध चालीस-पचास रतल (१ रतल = ३६ तोला) होता था। इस पर से आप समझ लेंगे कि उनकी मंशा क्या थी और गायों से वे क्या अपेक्षा रखते थे ? आजकल गाय का दूध नहीं मिलता, ऐसी शिकायतें आती हैं। वैदिक ऋषियों ने गोसेवा की दिशा भी बतलायी है।

अक्सर सुना जाता है कि दूध तो गायों से ज्यों-त्यों मिल सकता है, परन्तु घी के लिए तो भैंस की ही शरण लेनी पड़ेगी। लेकिन हमारे प्राचीन वैदिक ऋषि यह नहीं मानते। वे कहते हैं :

'यूयं गावो मेदयथाः कृशंचित्।'

हे गायो, जिसका शरीर (स्नेह के अभाव से) सूख गया हो, उसे तुम अपने मेद से भर देती हो। यहाँ 'मेदयथाः' यानी 'मेदती हो' का इस्तेमाल किया गया है। 'मेद' कहते हैं चरबी को, स्नेह को—जिसे हम अंग्रेजी में 'फैट' कहते हैं। इसका मतलब यह है कि दुबले-पतले को मोटा-ताजा बनाने लायक चरबी गाय के दूध में पर्याप्त मात्रा में होनी चाहिए। और अगर आज गाय के दूध में घी की मात्रा कम मालूम होती है, तो उसे बढ़ाना हमारा काम है। वह कसर गाय में नहीं, बल्कि हमारी कोशिश में है।

इसकी पुष्टि में उन्होंने गाय का वर्णन यों किया है :

'अश्रीरं चित् कृणुथा सुप्रतीकम् ।'

जो शरीर अश्रीर है, उसे गाय श्रीर बनाती है। 'श्रीर' का अर्थ 'शोभन' है और 'अश्रीर' का अर्थ 'शोभाहीन'। 'अश्रीर' से ही 'अश्लील' शब्द बना है। इस पर से आप समझ लेंगे कि हमको गोसेवा का पहला पाठ वैदिक ऋषियों ने पढ़ाया है। उसके विकास की दिशा भी बतला दी है और वह दिशा अनुचित पूजाभाव की नहीं, बल्कि शुद्ध वैज्ञानिकता की है, यानी परम उपयोगिता की है।

सेवा से मतलब उपयोगहीन सेवा नहीं है। उपयोग के साथ-साथ उपयोगी जानवर की यथासंभव अधिक-से-अधिक सेवा करना ही उसका अर्थ है। इसका भाव यह है कि उपयोगी जानवर को हमें अधिकाधिक उपयोगी बनाना है और इसी तरह हम इसकी अधिक-से-अधिक सेवा कर सकते हैं; जैसा कि हम अपने बाल-बच्चों के विषय में करते हैं। इस तरह हमारे लिए सेवा का उपयोग के साथ नित्य सम्बन्ध है। अब मैं जरा और आगे बढ़ूँगा। जैसे हम उपयोगहीन सेवा नहीं कर सकते, वैसे ही सेवाहीन उपयोग भी हमें नहीं करना चाहिए। 'गोसेवा' नाम में 'सेवा' शब्द का यही अर्थ है। यानी हम बगैर सेवा का लाभ नहीं उठायेंगे। यह आज भी होता है। हम ढोरों की सेवा कुछ-न-कुछ तो करते ही हैं। लेकिन शास्त्रीय दृष्टि हमारे पास नहीं है। विशेषज्ञों से इस काम में हम सहायता जरूर लेंगे। लेकिन सब काम उन पर नहीं छोड़ना चाहिए। हमें गाय की प्रत्यक्ष सेवा करनी चाहिए। जब ऐसा होगा, तब उसमें से गोसेवा का थोड़ा-बहुत शास्त्र हमारे हाथ आ जायगा।

पवनार में हमारे आश्रम के एक भाई, नामदेव ने दो-चार गायें पाली हैं। बाजार के लिए उसे एक दिन सेलू जाना पड़ा। शाम को नामदेव वापस लौटा और गाय दुहने के लिए बैठा, तो गाय ने दूध नहीं दिया। उसने काफी कोशिश की। तब उसने पूछा—"आज गाय को क्या हो गया है ?" जवाब मिला—"कुछ तो नहीं। पता नहीं दूध क्यों नहीं देती ? बछड़ा भी तो बँधा हुआ था। इसलिए वह भी दूध नहीं पी सका होगा।" निदान नामदेव ने पूछा—"किसीने उसे पीटा-पाटा तो नहीं ?" एक भाई ने कहा—"हाँ, पीटा तो सही।" नामदेव ने कहा—"बस, तो इसीलिए वह दूध नहीं देती।" फिर नामदेव गाय के पास पहुँचा। उसने उसके शरीर पर हाथ फेरा, उसे पुचकारा। तब गाय कुछ देर के बाद दूध देने के लिए तैयार हो गयी। यह किस्सा इसलिए कहा कि हमें समझना चाहिए कि जब हम नामदेव की तरह सेवा करेंगे, तो उसीमें से गोसेवा का रहस्य धीरे-धीरे स्पष्ट हो जायगा और गोसेवा का शास्त्र बनेगा।

कालिदास ने, जो कि हिन्दू संस्कृति के अप्रतिम प्रतिनिधि हैं, हमारे सामने इस सेवा का कितना सुन्दर आदर्श पेश किया है ? महाराज दिलीप ऋषि के आश्रम में रहने को आते हैं। ऋषि उन्हें गाय की सेवा का काम देते हैं, क्योंकि आश्रम में कोई बिना सेवा के रह ही नहीं सकता। आश्रम तो सेवा की ही भूमि है। हाँ, तो वे गो-सेवा का काम कितनी लगन से करते हैं ? उसकी कैसी सेवा-टहल करते हैं ? कैसे उसके पीछे-पीछे रहते हैं ? इसका चित्र कालिदास ने रघुवंश के एक श्लोक में यों खींचा है :

'स्थितः स्थितामुच्चलितः प्रयातां निषेदुषीमासनबंधधीरः।
जलाभिलाषी जलमाददानां छायेव तां भूपतिरन्वगच्छत् ॥'

अर्थात् शरीर की छाया की तरह राजा गाय का अनुचर बन गया

था। जब वह गाय खड़ी होती थी, तब वह भी खड़ा हो जाता था। जब वह चलती, तो वह भी चलता; वह बैठ जाती, तो वह भी बैठता; वह पानी पीती, तभी वह भी पानी पीता; गाय को खिलाये-पिलाये बिना वह खुद भी नहीं खाता-पीता था।

गाय एक उदार प्राणी है। वह हमारी सेवा और प्रेम को पहचानती है और अधिक-से-अधिक लाभ देने के लिए तैयार रहती है। 'सेवा' शब्द का दोहन करके मैंने यह दूध आपके सामने रख दिया है : एक तो हम बिना उपयोग के किसीकी सेवा नहीं कर सकते, और दूसरे सेवा किये बिना यदि हम उपयोग करेंगे, तो वह भी गुनाह होगा। हमें यह हरगिज नहीं करना है। ये दो बातें मैंने आपके सामने रखीं।

अब मैं और भी आगे बढ़ता हूँ। गोसेवा के कार्य का आरम्भ प्रतिज्ञा से होता है। अभिप्राय यह है कि अगर हम गाय के ही दूध-घी का सेवन करेंगे, तो उसकी सेवा करने की इच्छा पैदा होगी। इसलिए आरम्भ में गाय के ही दूध-घी के सेवन की प्रतिज्ञा रखी गयी है। कई लोग पूछते हैं—"प्रतिज्ञा की क्या जरूरत है। बिना प्रतिज्ञा के काम नहीं हो सकेगा ?" उत्तर में मैं अपना अनुभव बता दूँ। मैंने देखा है कि जिस प्रयत्न का आरम्भ संकल्प से होता है वह जैसे फलता है, वैसे केवल मंशा का प्रयत्न नहीं फलता। कोई महान् कार्य संकल्प के बिना नहीं होता। मगर हम संकल्प से आरम्भ करते हैं, तो आधे से अधिक कार्य वहीं हो जाता है। प्रतिज्ञा सिर्फ यही नहीं है कि घी-दूध खायेंगे या नहीं खायेंगे। गाय के दूध-घी की पैदाइश बढ़ाने की कोशिश करेंगे, यही प्रतिज्ञा का मतलब है।

प्रतिज्ञा लेने में अक्सर यह आपत्ति उठायी जाती है कि हम दूसरों के घर ऐसे नियम लेकर जायँगे, तो उनको तकलीफ

होगी। इसीलिए इसका जवाब बापू ने अपनी अहिंसा की भाषा में दिया है। मैं अपनी 'अनादर' की भाषा में बताना चाहता हूँ। इतना तकल्लुफ हमें क्यों रखना चाहिए? सूर्य को हम उसकी किरणों से जानते हैं। वह जहाँ जाता है, अपनी किरणें साथ ले जाता है। ये किसीको ताप दें, या आह्लाद दें, इस बात की वह परवाह नहीं करता। सूर्य अगर अपनी किरणों को छोड़ता है, तो उसका सूर्यत्व ही जाता रहता है। वैसे ही हमें भी अपनी किरणों को, यानी अपने उसूलों को, अपने साथ ले जाना चाहिए। अगर मैं किसीके घर में अपने सिद्धान्तों और विचारों को छोड़कर प्रवेश करूँ, तो मैं अपने अपनेपन को ही छोड़ देता हूँ; मैं 'मैं' ही नहीं रह जाता। अगर हम 'स्वत्व' छोड़कर किसीके घर जायँगे, तो उसको आनन्द होगा, ऐसी बात नहीं है। इसलिए प्रतिज्ञा जरूर लेनी चाहिए और लोगों की कल्पित तकलीफों के विषय में निर्भय रहना चाहिए।

अब एक बात और। गाय और भैंस के विषय में बहुत कुछ कहा गया है। दोनों मनुष्य को दूध देनेवाले जानवर हैं। दोनों में कोई मौलिक विरोध तो नहीं होना चाहिए। फिर भी हम गाय का ही दूध बरतने की प्रतिज्ञा लेते हैं, तो उसका तत्त्व हम लोगों को जान लेना चाहिए। हिन्दुस्तान का कृषि-देवता बैल है। यह तो सब जानते ही हैं कि हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है। बैल तो हमें गाय के द्वारा ही मिलता है। यही गाय की विशेषता है। उसके साथ-साथ गाय की अन्य उपयोगिता हम जितनी बढ़ा सकते हैं, जरूर बढ़ायेंगे। लेकिन उसका मुख्य उपयोग तो बैल की जननी के नाते ही है। बिना बैल के हमारी खेती नहीं होती। इसलिए हमें गाय की तरफ विशेष ध्यान देना चाहिए और उसकी सार-सँभाल करनी चाहिए। ऐसा अगर

हम नहीं करते, तो हिन्दुस्तान की खेती का भारी नुकसान करते हैं। जब हम इस दृष्टि से सोचते हैं, तो भैंस का मामला सुलझ जाता है। और यह सहज ही समझ में आ जाता है कि गाय को ही प्रोत्साहन देना हमारा प्रथम कर्तव्य क्यों हो जाता है।

मुझे याद आता है कि एक दफा मेरे एक मित्र ने सुनाया था कि उनके प्रान्त में अकाल के समय जानवर किस क्रम से मरे। उन्होंने कहा, सबसे पहले भैंसा मरता है। क्योंकि हम भैंसे की उपेक्षा करके उसे मार डालते या मरने देते हैं। वर्धा के बाजार में भैंसें ऐसी अवस्था में लायी जाती हैं, जब कि वे एक-दो घण्टे में ही व्याने को होती हैं। हेतु यह होता है कि लोग उन्हें तुरन्त खरीद लें। एक बार एक आदमी ऐसी एक भैंस बाजार को ला रहा था। उसी समय मनोहरजी ने, जो कि उन दिनों येलीकेली में महारोगी सेवा-मण्डल द्वारा महारोगियों की सेवा करते थे, उसको देखा। रास्ते में ही वह भैंस व्याई—पुत्र-जन्म हो गया। लेकिन उस आदमी को उस पुत्र-जन्म से बड़ी झुँझलाहट हुई। उसने सोचा, यह पुत्र कैसा? यह तो एक बला आ गयी। मनुष्य को तो पुत्र-जन्म से आनन्द होता है, लेकिन भैंस के पुत्र को वह सहन नहीं करता। उसने उस पुत्र को वहीं छोड़ दिया और भैंस को ले जाकर वर्धा के बाजार में बेच दिया और जो पैसा मिला, वह लेकर अपने घर चलता बना। बेचारा भैंस-पुत्र वहीं पड़ा रहा। मनोहरजी बेचारे दयालु ठहरे। फिक्र में पड़े कि अब इसका क्या किया जाय? जिस खेत में वह रहते थे, उस खेत के मालिक के पास गये और उससे कहा—"भैया, इसको सँभालोगे?" मालिक ने कहा—"यह क्या बला आ गयी? मैं इसको कैसे रखूँ? आखिर इसका उपयोग ही क्या है? मैं इसकी परवरिश क्यों करूँ? इसको आखिर दशहरे के दिन कत्ल होने के

लिए ही बेचना होगा। इसके सिवा और दूसरा कोई रास्ता नहीं है।"

मैंने यह एक नित्य की घटना आपके सामने रखी। तो, सबसे पहले बेचारा भैंसा मरता है। फिर उसके बाद गाय मरती है। उसके पश्चात् भैंस मरती है और सबसे आखिर में बैल। बैल सबसे उपयोगी है और इसीलिए उसकी हिफाजत करने की विशेष कोशिश की जाती है। लोग किसी-न-किसी तरह उसको खिलाते रहते हैं और उसे जिलाने की कोशिश करते हैं। यह तो हुई उपयोगिता की बात। बैल इन सब जानवरों में सबसे ज्यादा उपयोगी तो साबित हुआ। लेकिन सवाल यह है कि गाय की सेवा के बिना अच्छे बैल कहाँ से आयेंगे ? हिन्दुस्तान का आदमी बैल तो चाहता है, लेकिन गाय की सेवा करना नहीं चाहता। वह उसे धार्मिक दृष्टि से पूजने का स्वाँग रचता है। पर दूध के लिए तो भैंस की ही कद्र करता है। हिन्दुस्तान के लोगों की यह मंशा है कि उनकी माता तो रहे भैंस और बाप हो बैल ! यह योजना तो ठीक है; लेकिन वह भगवान् को मंजूर नहीं, इसलिए यह मामला बहुत टेढ़ा हो गया है। भैंस और गाय, दोनों का पालन हिन्दुस्तान के लिए आज बड़ी मुश्किल की बात हो गयी है।

लेकिन हमें यह समझ लेना चाहिए कि गोसेवा में गाय की ही सेवा को महत्त्व देना पड़ता है। बापू ने कहा कि अगर हम गाय को बचा लेंगे, तो भैंस का भी मामला तय हो जायगा। इसका पूर्ण दर्शन तो अभी मुझे भी नहीं हुआ है और शायद उसकी अभी जरूरत भी नहीं है।

गाय और भैंस को एक-दूसरे की विरोधी मानने की जरूरत नहीं है। लेकिन हमें तो गोसेवा से आरंभ कर देना है और वही हो भी सकता है। हमें समझना चाहिए कि आज हम दर-

असल भैंस की सेवा भी नहीं करते। आज हम जो भैंस की सेवा करते हैं, वह दरअसल न तो गोसेवा है और न भैंस की सेवा है। हम उसमें केवल अपना स्वार्थ देखते हैं। हम भैंस का केवल सेवाहीन उपयोग करते हैं। जिस प्रकार उपयोग-हीन सेवा हम नहीं कर सकते, उसी प्रकार सेवाहीन उपयोग भी हमें नहीं करना चाहिए।

जैसा कि मैं बता चुका हूँ, आज भैंसे की हर तरह से उपेक्षा की जाती है। वस्तुस्थिति यह है कि हिन्दुस्तान के कुछ भागों में भैंस का उपयोग भले ही किया जाता हो, लेकिन साधारणतः हिन्दुस्तान की गरम हवा में भैंसा ज्यादा उपयोगी नहीं हो सकता। भैंस का हम केवल लोभ से पालन कर रहे हैं। नागपुर-बरार में गरमियों में गरमी का मान एक सौ पन्द्रह अंश तक चला जाता है। खास कर उन दिनों में भैंस को पानी जरूर चाहिए। मगर यहाँ तो पानी की कमी है। पानी के बगैर उसको बेहद तकलीफ होती है, क्योंकि भैंस पूरी तरह जमीन का जानवर नहीं है। वह आधा जमीन का और आधा पानी का प्राणी है। गाय तो पूरी तरह थलचर है। और अक्सर देखा जाता है कि जो पानी-वाला जानवर है, उसके शरीर में भगवान् ने चरबी की अधिकता रखी है, क्योंकि ठंढ और पानी से बचने के लिए उसको उसे जरूरत होती है। मछली के शरीर में स्नेह भरा हुआ रहता है। पानी के बाहर निकालते ही वह सूर्य के ताप से जल जाती है। वैसी ही कुछ-कुछ हालत भैंस की भी है। उसे धूप बरदाश्त नहीं होती। इसीलिए लोग गरमी के दिनों में उसीके मल-मूत्र का उसकी पीठ पर लेप करते हैं, ताकि कुछ ठंढक रहे। वे जानते हैं कि उस जानवर को उस समय कितनी तकलीफ होती है। देहात में जाकर आप लोगों से पूछेंगे कि आपके गाँव में कितनी भैंसें

और कितने पाड़े हैं, तो वे कहेंगे कि भैंसें हैं करीब सौ-डेढ़ सौ और पाड़े हैं कुल दस या बहुत हुए तो बीस। अगर हम उनसे पूछें कि इन स्त्री-पुरुषों या नर-मादाओं की संख्या में इतनी विषमता क्यों है, तो हमारे देहातों के लोग जवाब देंगे—'क्या करें ? भगवान् की करतूत ही ऐसी है कि भैंसा ज्यादा दिन जीता ही नहीं।' आखिर यहाँ भी भगवान् की करतूत आ ही गयी ! यह हमारे बुद्धिनाश का लक्षण है। हम उसकी तकलीफ का ध्यान न करते हुए भैंस का उपयोग करते हैं और कहते हैं कि भैंसे जिन्दा ही नहीं रहते और नहीं रहेंगे। मतलब, हम भैंस की सेवा करते हैं, ऐसी बात नहीं है। उसमें हम सिर्फ भैंस का उपयोग ही करते हैं। बाकी उसकी सेवा कुछ भी नहीं करते।

चन्द लोग पूछते हैं—"हिन्दुस्तान कृषि-प्रधान देश है, इसलिए खेती के वास्ते बैल चाहिए। और बैल चाहिए, तो गाय भी चाहिए, इत्यादि विचारश्रेणी तो ठीक है; मगर क्या हिन्दुस्तान का यही एक अर्थशास्त्र हो सकता है ? क्या दूसरा कोई अर्थशास्त्र ही नहीं हो सकता ? समय आने पर हम खेतों का काम ट्रैक्टर से क्यों न करें ?"

उसके जवाब में मैं यह पूछता हूँ कि ट्रैक्टर चलायेंगे, तो बैल का क्या होगा ? जवाब मिलता है—"बैल को हिन्दुस्तान के लोग खा जायँगे। हिन्दुस्तान के लोग दूसरे कई जानवरों का मांस बराबर खाते हैं; उसी तरह बैल का मांस भी खा सकते हैं। यह रास्ता क्यों न लिया जाय ?" इस तरह जब बैलों को खा जाने की व्यवस्था होगी, तभी ट्रैक्टर द्वारा जमीन जोतने की योजना हो सकती है। कहा जाता है कि बैलों को अगर हिन्दू

नहीं खायेंगे, तो गैरहिन्दू खायेंगे। आज भी हिन्दू गाय तो बेचते ही हैं। खुद तो कसाई से पैसा ले लेते हैं और गोहत्या का पाप उसे दे देते हैं! ऐसी सुन्दर आर्थिक व्यवस्था उन्होंने अपने लिए बना ली है। वह कहता है कि अगर मैं कसाई को गाय मुफ्त में देता, तो गोहत्या के पाप का भागी होता। लेकिन मैं तो उसे बेच देता हूँ। इसलिए पाप का हिस्सेदार नहीं बनता। इस व्यवस्था को आगे बढ़ायेंगे, तो सब ठीक हो जायगा। हम भैंस से दूध लेंगे, बैलों को खा जायेंगे और यंत्रों के द्वारा खेती करेंगे —इस तरह तीनों का सवाल हल हो जायगा।

इसके जवाब में मैं अब आप लोगों को यह समझाना चाहता हूँ कि बैलों को क्यों नहीं खाना चाहिए। पूर्वपक्ष की दलील यह है कि कुछ 'प्रेज्यूडिस्ड लोग' यानी पूर्वग्रहदूषित लोग बैल को भले ही न खायँ, लेकिन बाकी के तो खायेंगे और हम यन्त्र के द्वारा मजे में खेती करेंगे। इस विषय में हमारे विचार साफ होने चाहिए। मैं मानता हूँ कि हिन्दुस्तान की आज की जो हालत है और आगे उसकी जो हालत होनेवाली है, उस हालत में अगर हम मांस का प्रचार करेंगे और यंत्र से खेती करेंगे, तो हिन्दुस्तान और हम जिन्दा नहीं रह सकेंगे। यह समझने की जरूरत है। हिन्दुस्तान के लोग भी अगर गाय-बैल खाने लगेंगे, तो कितने प्राणियों की जरूरत होगी? उतने बैलों की पैदाइश हम यहाँ नहीं कर सकेंगे। सिर्फ मांस या गोश्त खाने का ढोंग तो नहीं करना है। मांस अगर खाना है, तो वह हमारे भोजन का नियमित हिस्सा होना चाहिए। तभी तो उससे अपेक्षित लाभ होगा। लेकिन हम जानते हैं कि लोग खा सकें, इतने बैल पैदा नहीं हो सकेंगे। अगर हम इस तरह करने लगे और खेती ट्रैक्टर के द्वारा होने लगी, तो ट्रैक्टर का खर्च बढ़ेगा और गोश्त भी पूरा

नहीं पड़ेगा। और आखिर में गाय और बैल का वंश ही नष्ट हो जायगा और उसके साथ मनुष्य भी।*

• • •

मुख्य जरूरत है सेवकों की : ७ :

गाय को मानव-कुटुम्ब का हमने हिस्सा माना है, इसके मानी ये हैं कि हमने एक ऐसे समाजवाद की कल्पना की कि जिसमें गाय और बैल ग्रामीण अर्थशास्त्र के केन्द्र बन जाते हैं। इस चीज का भान उन लोगों को नहीं है, जो सिर्फ दुग्धादि के लोभ से गोपालन और गोसंवर्द्धन की बात करते हैं। खेती के बैल के खिलाफ याने उसे बेकार करनेवाला कोई औजार इस्तेमाल नहीं किया जाना चाहिए। निकम्मे जानवर पैदा न हों, इस तरह का विज्ञान सीखना चाहिए। गायों को भी उनकी सेहत सुधारने के वास्ते कुछ काम देने की योजना करनी चाहिए। अलावा इसके, उनसे हमको दूध मिलता है। कमजोर जानवरों के लिए गोसदन न सिर्फ सरकार की ओर से, बल्कि महाजनों की ओर से भी खुलने चाहिए। जानवरों के मल-मूत्र, हड्डी, चर्म आदि का पूरा उपयोग लेना चाहिए। श्रीकृष्ण भगवान् के समान कार्यकर्ता के हाथ गोबर से लिप्त रहने चाहिए। यह सब करेंगे, तभी गोपालन और संवर्द्धन हो सकेगा।

गाँव में गाय-बैलों के चरने के वास्ते बंजर भूमि छोड़ देते हैं। यह पर्याप्त नहीं है। बल्कि जितनी भूमि हम तोड़ सकते हैं, तोड़ें और खास किस्म की घास, जो विशेष पोषक हो, पैदा करनी चाहिए। गर्मी में भी कुछ हरी चीज गाय-बैलों को मिल सके,

---

* वर्धा की गोसेवा-परिषद् में अध्यक्ष पद से दिये गये भाषण का सार।

फरवरी, १९४२.

ऐसी योजना होनी चाहिए। इसलिए पानी का जरूरी इन्तजाम होना चाहिए।

मुख्य जरूरत है, लगन से और ढंग से काम करनेवाले सेवकों की। आशा करता हूँ, ऐसे सेवक अधिकाधिक मिलते जायँगे।

○ ○ ○

गो-रक्षा एक सांस्कृतिक माँग है : ८ :

मैं मानता हूँ कि भारतीय सभ्यता की यह माँग है कि हिन्दुस्तान में गोरक्षा होनी ही चाहिए। अगर हिन्दुस्तान में हम गोरक्षा नहीं कर सके तो आजादी के कोई मानी ही नहीं होते। अगर गोरक्षा नहीं होती है तो हमने अपनी आजादी खोयी और उसकी सुगन्ध गवाँयी, ऐसा कहना होगा।

हर हिन्दू अच्छा हिन्दू बने

हिन्दुस्तान में आज 'सेक्यूलर स्टेट' की बात चली है। यह अच्छी बात है, गलत नहीं है। अपनी सभ्यता में ही यह बात है कि जो राज्य चलेगा, वह सब धर्मों की समान रक्षा करेगा, पक्षपात नहीं करेगा। अशोक के जमाने में भी वह खुद बौद्ध था परन्तु प्रजा तीन धर्मों में, हिन्दू, बौद्ध और जैनधर्म में बँटी हुई थी। लेकिन तीनों की समान इज्जत होती थी और तीनों की समान रक्षा होती थी। इसलिए हम अशोक का इतना आदर करते हैं और हमने उसीका चिह्न अपने राज्य के लिए ले लिया है। 'सेक्यूलर स्टेट' होना तो अच्छा ही है। उसका गोरक्षा के साथ कोई विरोध नहीं है। अगर ऐसा होता कि आज हिन्दुस्तान में जितने धर्म हैं उनमें से एक धर्म कहता कि गाय को मारना पाप है और दूसरा धर्म कहता कि गाय का कत्ल करना पूज्य

है तो सरकार कहती कि इस तरह दो धर्मों में विरोध है तो दोनों को अपने-अपने मत के अनुसार चलने की इजाजत होनी चाहिए। इसलिए सरकार इस बारे में कुछ नहीं कर सकती। परन्तु आज ऐसी बात नहीं है। मैंने कुरान का और बाइबल का गहराई से और अत्यन्त प्रेम के साथ अध्ययन किया है और जिस तरह मैंने वेदों का चिन्तन किया है उसी तरह कुरान और बाइबल का भी किया है। इसलिए मैं मुसलमान और ईसाइयों की ओर से उनका प्रतिनिधि बनकर कहता हूँ कि उन दोनों धर्मों में ऐसी कोई बात नहीं है कि गाय का बलिदान हो। उन धर्मों में बलिदान की बात तो है। वैसे हिन्दूधर्म में भी है। परन्तु गाय का ही बलिदान होना चाहिए, ऐसी कोई बात उन धर्मों में नहीं है। और इस्लाम की तो यह आज्ञा है कि अपने पड़ोसी की भावनाओं का खयाल करो। इसलिए मैं कहता हूँ कि अपने 'सेक्यूलर स्टेट' में गोरक्षा होनी चाहिए। परन्तु आजकल कुछ लोगों को 'हिन्दू' कहलाने में भी झिझक मालूम होती है। यह बात गलत है। मैं तो कहता हूँ कि हरएक हिन्दू अच्छा हिन्दू बने। हरएक मुसलमान अच्छा मुसलमान बने और हरएक ईसाई अच्छा ईसाई बने और यहाँ पर सब धर्मों का एक सुयश संगीत चले। एक-दूसरे की उपासना से एक-दूसरे को पुष्टि मिले और सब मिलकर भगवान् का गुणगान करें। भगवान् के अनन्त नाम और अनन्त गुण हैं।

भिन्न-भिन्न रास्ते मात्र

जब एक मामूली शहर में पहुँचने के लिए कई रास्ते होते हैं, तो भगवान् के पास पहुँचने के असंख्य रास्ते हो सकते हैं। इसलिए हर कोई अपनी-अपनी भक्ति से भगवान् के पास पहुँचने की कोशिश करे। इससे हिन्दू न सिर्फ अच्छे हिन्दू बनेंगे, बल्कि अच्छे मानव बनेंगे। मुसलमान न सिर्फ अच्छे मुसलमान बनेंगे, अच्छे मानव भी

बनेंगे। ईसाई न सिर्फ अच्छे ईसाई बनेंगे, बल्कि अच्छे मानव बनेंगे। इसलिए सब अपने-अपने धर्मों की एकाग्रता और निष्ठा से उपासना करें, यही मैं चाहता हूँ। इससे अपने देश में एक मधुर स्नेहमय जीवन बनेगा। इसलिए हिन्दुओं को खुद 'हिन्दू' कहलाने में लज्जा नहीं मालूम होनी चाहिए, बल्कि उनको निष्ठा से हिन्दूधर्म की उपासना करनी चाहिए। मैं जानता हूँ कि केन्द्रीय सरकार की गोरक्षा के प्रति सहानुभूति है। परन्तु वह कहती है कि यह राज्य-सरकार का काम है।

गाय और बैल, दोनों में फर्क क्यों ?

मध्यप्रदेश में गोरक्षा का कानून बना है। वह कानून कैसा बना है, वह मैंने नहीं देखा है। बिहार में भी एक कानून बनने जा रहा है। मैंने उस बिल को देखा है। उससे मेरा समाधान नहीं हुआ। उसमें गाय और गाय के बछड़ों की रक्षा की ही बात है, यह देखकर मैं ताज्जुब में रह गया। इस तरह गाय और बैल में फर्क क्यों किया जा रहा है। परन्तु मैंने सुना है कि हमारे संविधान में गोरक्षा का जो कालम है, उसके मुताबिक गाय और गाय के बछड़ों की रक्षा की ही जिम्मेदारी मानी गयी है। बैल की जिम्मेदारी नहीं मानी गयी है। संविधान के बारे में कुछ कहने का मैं अधिकारी नहीं हूँ। उसके जो माहिर हैं, वे वकील लोग ही उसके बारे में कहेंगे। परन्तु मैं कहना चाहता हूँ कि संविधान का यह अर्थ मैं नहीं मानता हूँ। आपने केवल आर्थिक खयाल से गाय की जिम्मेदारी उठायी है या भारतीय सभ्यता की यह माँग है, इस खयाल से उठायी है ? अगर केवल आर्थिक खयाल हो तो गाय की जिम्मेदारी न उठायें; क्योंकि अर्थशास्त्र की दृष्टि से लूली, लँगड़ी, कमजोर गायों की रक्षा करना गलत माना गया है।

बैलों की रक्षा के बिना गोरक्षा अधूरी

अर्थशास्त्र एक ही है। वह कहता है कि कमजोर गाय और बैलों को मारो तो उत्तम गाय और बैलों की रक्षा होगी। अगर ऐसी बात है तो फिर आप कमजोर गायों की रक्षा की जिम्मेदारी क्यों उठाते हैं ? इसलिए न कि भारतीय सभ्यता की यह माँग है ? अगर ऐसा समझते हों तो बैलों की रक्षा की भी जिम्मेदारी उठायें। गाय और बैल, दोनों मिलकर 'गो' कहा जाता है। दोनों में फर्क नहीं है। वेदों में गाय के लिए "अघ्नेया" और बैल को "अघ्नेय" कहा गया है। इस शब्द का मतलब है—जिसको मारना नहीं। इस तरह यहाँ की सभ्यता ने गाय और बैल, दोनों की रक्षा की जिम्मेदारी उठायी है। इसलिए मैं चाहता हूँ कि असेम्बली में हमारे जो भाई हैं, वे उस बिल में संशोधन करें, और बैल की भी जिम्मेदारी उठायें।

हमारी सभ्यता का खयाल

अगर यहाँ की सभ्यता का खयाल करते हों तो ऐसा करना होगा। और केवल अर्थशास्त्र की दृष्टि से सोचते होंगे तो कमजोर गायों की भी जिम्मेवारी न उठायें। साफ कहो कि हम गरीब हैं, हम कमजोर गाय-बैलों की जिम्मेदारी नहीं उठा सकते हैं। परन्तु कुछ संस्कृति का खयाल करते हों तो फिर केवल गाय की ही जिम्मेवारी क्यों उठायी ? गाय और बैल, दोनों की जिम्मेवारी उठाना यह हिन्दुस्तान का समाजवाद है। पाश्चात्य देशों के समाजवाद से हमारे देश के लोग एक कदम आगे बढ़े हैं। उनका समाजवाद मानता है कि हरएक मनुष्य की पूरी रक्षा होनी चाहिए। लेकिन भारतीय समाजवाद की मान्यता में गाय को भी अपने परिवार में दाखिल किया है। हाँ, उसके अनुसार आज हम वर्ताव ही नहीं करते हैं, सिर्फ गो का आदर रखते

हैं। परन्तु उसकी सेवा का जैसा कार्य विदेशों में चलता है वैसा नहीं करते। फिर भी हमारे मन में उसके लिए आदर है। जिस तरह हम अपने घर के बूढ़े लोगों की रक्षा करते हैं, उसी तरह गाय-बैल को भी हमने अपने परिवार में दाखिल किया है। उन दोनों का हम पूरा उपयोग लेंगे, उनका दूध लेंगे, उनके गोबर का उपयोग करेंगे, मरने पर उनके चमड़े का उपयोग करेंगे, परन्तु उन्हें सहज मृत्यु मरने देंगे। यह बात यहाँ के समाजवाद ने मानी है। लेकिन उसके साथ हमें वैज्ञानिक बुद्धि रखनी चाहिए। सिर्फ गाय की पूजा करने से काम नहीं होगा। गोसदन खोलना चाहिए। कमजोर गायों की रक्षा के लिए व्यापारियों और श्रीमान् लोगों को मदद करनी चाहिए। प्रजा को यह त्याग करना चाहिए और उसके साथ-साथ सरकार को भी उपयुक्त कानून बनाना चाहिए।

—विनोबा

मेरी यह भविष्यवाणी है कि जैसे-जैसे जनसंख्या बढ़ती जायगी वैसे-वैसे दुनिया भर में गोश्त की महिमा कम होगी और दूध की बढ़ेगी। गो-दुग्ध ऐसी चीज है जिसने लोगों को मांसाहार से छुड़ाया। इसलिए वह पवित्र माना गया।

—विनोबा

हृदय-बल, बुद्धि-बल, विज्ञान-बल, धन-बल, व्यापार-बल और संघ-बल काम में लेकर धर्मनिष्ठ मनुष्य को मनुष्य-कुटुंब में दाखिल हुए असहाय प्राणी गोवंश का रक्षण करना चाहिए।

—काका कालेलकर

गाय का आर्थिक पहलू : ६ :

आज गाय को बूचड़खानों से बचाने के लिए खूब बातें की जाती हैं। यह खुशी की बात है कि भारी पशु-वध के कारण हमारे देश में जो बुराइयाँ आयीं, लोग उन्हें समझने लगे हैं। निरी संकुचित दृष्टि से देखें तो चूँकि एक शाकाहारी देश में दूध की आवश्यकता बड़े महत्त्व की होती है, गाय को राष्ट्र की पोषिका के रूप में प्रमुख स्थान मिलना चाहिए। इसके अतिरिक्त उससे बैल भी मिलते हैं, जिनके बल पर किसान खेती करता है। गाय को माता का पूजनीय स्थान देकर गो-वध को एक धार्मिक प्रश्न के स्तर पर लाकर प्रश्न के इस पहलू के महत्त्व को पूरी तरह समझा दिया गया है। किसी तरह पागलपन के कारण जहाँ एक ओर इतनी ऊँची भावना थी, वहाँ दूसरी ओर कितनी संकुचित मनोवृत्ति हो गयी! गो-वध को लेकर जनता के विभिन्न वर्गों में प्रायः कितने झगड़े देखने में आते हैं। इसलिए अब हिन्दुस्तान में गाय का ठीक-ठीक स्थान क्या है, यह तय कर लेना और राष्ट्रीय पैमाने पर उसके बारे में सोचना जरूरी हो गया है।

एक कारीगर के लिए जिस औजार का वह उपयोग करता है, वह बिल्कुल पूजा की चीज बन जाता है। वास्तव में इस संस्कार को कराने के लिए हिन्दुस्तान में शस्त्र-पूजा का एक निश्चित त्यौहार ही हम मनाते हैं। मनुष्य जानता है कि आर्थिक दृष्टि से वह उत्पादन के साधनों पर अवलम्बित है। जैसे एक कारीगर अपने औजारों पर निर्भर रहता है, एक किसान गाय पर निर्भर रहता है और यदि हम आर्थिक क्षेत्र का प्रसार करें तो कह सकते हैं कि गाय चूँकि अन्न के उत्पादन का साधन है,

इसलिए वह मनुष्य के आर्थिक संगठन का केन्द्र बन जाती है, खास तौर से हिन्दुस्तान जैसे कृषि-प्रधान देश में।

इस पक्ष को छोड़कर जब हम गाय पर बैल की जननी के रूप में विचार करते हैं, तो गाय का महत्त्व और भी बढ़ जाता है। अब वह हमारी अर्थ-व्यवस्था का केन्द्र बन जाती है। हम अपनी आर्थिक-व्यवस्था को, जहाँ चालक शक्ति (Motive Power), यातायात, अन्न-उत्पादन इत्यादि में गाय की बड़ी देन है, उसी प्रकार "गाय केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था" कह सकते हैं, जैसे इंग्लैंड और यूरोप के दूसरे देश, बहुत दिनों की बात नहीं है, 'अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था' वाले थे।

पिछली शताब्दी में ही इंग्लैंड अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को छोड़कर कोयला-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था में आया और अब कोयला-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था से बड़ी तेजी के साथ तेल-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था की ओर बढ़ रहा है। इन सब स्थितियों पर ध्यान देना बहुत जरूरी है, क्योंकि दुनिया का भाग्य ही, जिन साधनों में हमें शक्ति मिलती है, उन पर निर्भर है।

गाय और अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाओं में हमारे साधन असीम रहते हैं, क्योंकि हम चाहे जितने बैल और अश्व उत्पन्न कर सकते हैं और चूँकि जितनी संख्या में वे प्राप्त होते हैं उस पर कोई पाबन्दी नहीं होती, इसलिए किसीके मन में लालच या ईर्ष्या पैदा नहीं होती। लेकिन कोयला और पेट्रोल या तेल सीमित हैं और सीमित मात्रा में मिलते हैं, इसलिए शक्ति के ऐसे साधन जैसे ही वे समाप्त होने लगते हैं, राष्ट्रों में झगड़े की जड़ बन जाते हैं। अब यह अच्छी तरह स्पष्ट हो गया है कि इन महायुद्धों का बहुत बड़ा कारण अलग-अलग राष्ट्रों का तेल के सोतों पर अपना अधिकार जमाने का प्रयत्न ही था, इसीलिए कोयले और तेल पर निर्भर

अर्थ-व्यवस्थाएँ राष्ट्रों को आपस में लड़ाने का काम करती हैं। इन दोनों से भिन्न गाय और अश्व-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्थाएँ अपेक्षाकृत शान्तिमय व्यवस्थाएँ हैं। इसलिए व्यापक अर्थ में हम कह सकते हैं कि जब हम गाय-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था को तोड़ते हैं तो वास्तव में हम गो-वध ही करते हैं। दूसरे शब्दों में जब हमारे काम "गाय-केन्द्रित अर्थ-व्यवस्था" के विरुद्ध होते हैं, तो हम गो-रक्षकों की पंक्ति से बाहर हो जाते हैं। उदाहरण के लिए जब हम चालक-शक्ति (Motive Power) के लिए कोयले और तेल से काम लेते हैं, तब हम वास्तव में गाय को अपनी अर्थ-व्यवस्था से निकाल देते हैं। जब हम कंकरीट या तारकोल की पक्की सड़कें बनाते हैं, जो जानवरों की सुविधा की दृष्टि से नहीं बनायी जातीं, तब भी हम गाय-केन्द्रित व्यवस्था को तोड़ने का अपराध करते हैं। केवल एक चार पाँव और दो सींगवाले जानवर के वध की अपेक्षा इस प्रश्न का यह (आर्थिक) पहलू हमारे लिए अधिक महत्त्वपूर्ण है।

हमें आश्चर्य होता है, गो-वध का विरोध करनेवाले हमारे कितने दोस्त ऐसे निकलेंगे जो गो-रक्षा के ऊँचे अर्थ में यह कह सकें कि उनके हाथ गोरक्त (Bovine) से नहीं सने हैं। खादी की तरह गाय भी एक तरह के जीवन का प्रतीक है। गोवध का इसलिए यही अर्थ होगा कि उस प्रकार के जीवन को असम्भव बना देना। हमें आशा है, जो लोग गो-रक्षा के हामी हैं, वे जिस चीज के लिए खड़े हैं, उसके विस्तार को समझें और इसी विस्तार के साथ उस पर अमल करने में पूरे दिल से सहायता और सहयोग दें।

—जो० कॉ० कुमारप्पा

गो-सेवा की नीति

[राधाकृष्ण बजाज]

सेवा

पूज्य विनोबाजी ने कहा है कि "गोसेवा-संघ की नीति 'सेवा' शब्द में निहित है। गाय एक उदार प्राणी है। वह हमारी सेवा और प्रेम को पहचानती है और हमें अधिक-से-अधिक लाभ देने के लिए तैयार रहती है। इसलिए हमें उसकी सेवा करनी है। सेवा में दो बातें गृहीत हैं। एक तो हम बिना उपयोग के किसीकी सेवा नहीं कर सकते और दूसरे सेवा किये बिना हम उपयोग लेंगे तो वह गुनाह होगा और हमें वह गुनाह हरगिज नहीं करना है।"

गाय की मजबूत बछड़े देने की शक्ति को बढ़ाना है। बछड़ों का पूरा उपयोग करना है। गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ानी है। उससे जुताई में भी जितनी मदद मिल सके, लेनी है। गोबर व गोमूत्र का खाद के रूप में अच्छे-से-अच्छा उपयोग करना है तथा मरने पर उसके चमड़े, हड्डी, मांस, चरबी इत्यादि का पूरा लाभ उठाना है। इसके लिए अधिक-से-अधिक शास्त्रीय ज्ञान प्राप्त करना है तथा प्राप्त ज्ञान का उपयोग करना है। ये सब बातें पूरा उपयोग लेने में आती हैं। गाय को समय पर उचित मात्रा में चारा-पानी देना, उसके रहने की अच्छी व्यवस्था करना, काम लेने में उस पर ज्यादती न करना, साफ-सफाई रखना, बीमारी का इलाज करना, उसके सुख-दुख का पूरा खयाल रखना और बूढ़ी होने पर उसको मरने तक खाना देना, इतनी बातें सेवा में आती हैं।

ऊपर की नीति के अनुसार यह बात स्पष्ट है कि हम गाय का शास्त्रीय संवर्धन करना चाहते हैं और उसका वध कतई बन्द करना चाहते हैं। हम यह मानते हैं कि गाय अर्थशास्त्र में टिकनी चाहिए और अर्थशास्त्र में टिकेगी तभी उसका पूरा पालन हो सकेगा। उस दृष्टि से जीवन भर गाय को स्वावलम्बी बनाने का हमारा प्रयत्न रहेगा। लेकिन बूढ़ी होने पर गाय का वध करना आर्थिक दृष्टि से लाभदायक होने पर भी हम उसका समर्थन नहीं कर सकते। प्राचीन संस्कृति को कायम रखने के लिए तथा मनुष्यत्व की नैतिक प्रेरणा के संतोष के लिए जिस गाय ने जीवन-भर हमारी सेवा की, उसका बुढ़ापे में वध करने की बात हमारा दिल कबूल नहीं कर सकता। शास्त्रीय गो-संवर्धन और संपूर्ण गोवध-बन्दी ही हमारी नीति रहेगी। गाय से हमारा मतलब गाय, बैल, बछड़े, बछड़ी अर्थात् पूरे गोवंश से है।

कुछ लोग कहते हैं, प्राचीनकाल में तो गोमांस खाया जाता था। आप गोवध-बन्दी की बात कहाँ से लाये? इस बारे में काकासाहब के शब्द ध्यान देने योग्य हैं :

"कुछ लोग कहते हैं कि वैदिक-काल में मांसाहार था ही नहीं। अपने इस मत के समर्थन में वे वैदिक मंत्रों के नये अर्थ पेश करते हैं। मैं उनसे कहता हूँ, आपके किये हुए अर्थ हैं तो अच्छे, परन्तु सच्चे भी हैं या नहीं, यह मुझे देखना होगा। महाभारत-काल में मांसाहार प्रचलित था। चंबल नदी के किनारे राजा रंतिदेव के यज्ञ में हजारों पशुओं का वध होता था। उसका वर्णन पढ़कर आज भी रोंगटे खड़े हो जाते हैं। हमारे देश में न सिर्फ मांसाहार का रिवाज था, बल्कि किसी समय गोमांस भी खाया जाता था। बाद में गाय से ही हमें अहिंसा की शिक्षा मिली। कैसे, सो आगे सुनियेगा। चूँकि दूसरे पशुओं की अपेक्षा गाय

का ऋण हम पर अधिक है, इसलिए उसकी रक्षा हमें विशेष रूप से करनी है।

"मनुष्य विना मांस के अपना काम न चला पाता; लेकिन, चूँकि गाय ने अपना दूध और घी उसे विशेष मात्रा में दिया, इसलिए वह मांस छोड़ सका। गाय ने अपनी देह का निचोड़ दूध और घी के रूप में देकर अपने वंश और दूसरे जानवरों को बचा लिया है, दूसरी ओर गोपुत्रों ने याने बैलों ने हमारे खेतों में मेहनत करके अनाज इतनी मात्रा में पैदा कर दिया कि मांसाहार की आवश्यकता कम हो गयी।

"तीसरी एक बात और भी हुई। बैलों ने कपास की खेती में हमारी मदद करके हमें अच्छे कपड़े दिये और जब कपड़ों के कारण हमारी गर्मी सुरक्षित रहने लगी, तो हमारी खुराक कम हो गयी याने हमें ज्यादा खाने की जरूरत न रह गयी। अन्न और वस्त्र, दोनों का हेतु है शरीर की गर्मी को बनाये रखना। जब पूरे कपड़े मिलने लगते हैं, तो आहार कम हो ही जाता है। जो साधु बहुत ही कम कपड़े धारण करते हैं, उनकी खुराक ज्यादा होती है। मैंने उनके बीच स्वयं रहकर इसे देखा है। इस तरह बैल ने अहिंसा के पालन में हमारी बड़ी मदद की है। इसलिए मैं कहता हूँ कि अहिंसा का तकादा है कि हम गाय और बैल की विशेष रूप से रक्षा करें।"

सर्वांगी

गाय की सेवा करना तय होने के बाद यह सवाल उठता है कि हमें किस तरह की गायों को तरक्की देनी चाहिए ताकि गो-पालन सुलभ हो और गो-वध रोका जा सके। इस दृष्टि से विचार करने पर मालूम हुआ कि हमारे पास चारे की कमी है और

पशुओं की संख्या अधिक है। इसलिए हम चाहते हैं कि पशुओं की संख्या कम रहे। लेकिन खेती की दृष्टि से बैलों की शक्ति बढ़े और देश की जरूरत को देखते हुए दूध का उत्पादन आज से कई गुना अधिक हो। संघ की राय है कि किसान दूध के लिए अलग और खेती के लिए अलग नस्लों के पशु रखकर दो जोड़ी को पूरा खाना नहीं दे सकता। उसके दोनों काम एक ही जोड़ी से याने एक ही नस्ल के गाय-बैलों से पूरे होने चाहिए, ताकि पशु-संख्या कम रहे। ये दोनों काम पूरे करने की जिस नस्ल में शक्ति हो उसे सर्वांगी कहा गया है। जैसे हरियाना, थरपारकर, गीर, कांकरेज, औंगल आदि।

दूसरी बात यह है कि जो गायें दूध अधिक देती हैं, लेकिन खेती के लायक अच्छा बैल नहीं देतीं (जैसे अर्ध-इंग्लिश, शाहीवाल या सिंधी) उनके नरों की पूरी हिफाजत नहीं होती और वे जीते हैं तो भाररूप रहते हैं या मार दिये या मरने दिये जाते हैं। उसी तरह जो गायें खेती के लिए बैल अच्छे देती हैं, लेकिन दूध कम देती हैं (जैसे निमाडी, मालवी, गौलाऊ, शाहबादी, बछोर, अमृतमहाल, हल्लीकर, कंगायम आदि) उनकी बछड़ियों (मादाओं) की पूरी हिफाजत नहीं होती, न उन्हें बराबर खाना दिया जाता है; नतीजा यह होता है कि या तो वे धीमी भूख से मर जाती हैं या कत्ल कर दी जाती हैं। इस तरह के दुग्धप्रधान या वत्सप्रधान, दोनों एकांगी नस्लों के एक-एक पशु किसी-न-किसी तरह से हिंसा के शिकार होते हैं।

इसलिए संघ की राय है कि सारी गायों का विकास सर्वांगी रूप से किया जाय। आज जो वत्स-प्रधान गायें हैं, उन्हें सिलेक्टिव ब्रीडिंग (Selective Breeding) द्वारा अधिक दूध देने की शक्ति बढ़ाकर सर्वांगी बनाया जा

सकता है। उसी तरह दूध-प्रधान (Milch Breed) गायों के बैलों में खेत जोतने की शक्ति पैदा करके उन्हें भी सर्वांगी बनाया जा सकता है। कुल मिलाकर भारत की सारी गायें सर्वांगी बनायी जा सकती हैं। मुख्य बात यह है कि सर्वांगी बनाने का लक्ष्य रखकर नस्ल-सुधार का काम होना चाहिए। कुछ विशेषज्ञ मानते हैं कि एक ही नस्ल में दूध देने की शक्ति व अच्छे बैल देने की शक्ति साथ-साथ नहीं बढ़ायी जा सकती। एक के बढ़ाने से दूसरी कम होती है। हम इससे सहमत नहीं हैं। लेकिन मान लिया जाय कि बहुत आगे जाकर यह बात सही हो, तब भी मध्यस्थिति के पशु पैदा करने में कोई दिक्कत नहीं है। आज हमारे पास हरियाना, थरपारकर जैसी गायें मौजूद हैं, जिनके बैल खेती में बढ़िया-से-बढ़िया काम देते हैं और जिनकी गायें २० से ३० रतल तक रोजाना दूध देती हैं। हमारी नस्लें इस हद तक पहुँच जावें तो काफी है। हमें खुशी है कि संघ के सुझाव पर भारत सरकार ने भी सर्वांगी नस्ल के बढ़ावे की नीति स्वीकार कर ली है। इस संबंध में भारतीय कृषि-अनुसंधान परिषद् का प्रस्ताव इस प्रकार है :

१. हमारे देश के बहुतेरे मवेशी किसी नस्ल में शुमार नहीं किये जा सकते, यह वस्तुस्थिति है। उसे नजर में रखते हुए यह आवश्यक है कि सर्वांगी नस्ल के मवेशी पैदा किये जावें। याने एक ही नस्ल में खेती लायक मजबूत बैल पैदा करने की और अधिक मात्रा में दूध देनेवाली बछियाँ पैदा करने की दोनों शक्तियाँ साथ-साथ जहाँ तक संभव हो अधिक-से-अधिक मर्यादा तक बढ़ायी जावें। दूसरे शब्दों में यों कह सकते हैं कि जिनकी नस्ल तय नहीं है, ऐसे मवेशियों में ये दोनों गुण साथ-साथ साधारण हद तक बढ़ाये जा सकें, तो भी हमारे कार्य की पूर्ति के लिए अच्छी शुरुआत समझनी चाहिए।

२. जिन क्षेत्रों में विशेष नस्लें मौजूद हैं, वहाँ सिलेक्टिव ब्रीडिंग की रीति से नस्ल सुधार किया जाय। उस सुधार में दृष्टि यह रहे कि बैल-शक्ति एवं दूध-शक्ति, दोनों साथ-साथ बढ़ें।

३. जहाँ वत्सप्रधान नस्लें निश्चित रूप में मौजूद हैं, वहाँ उनके सुधार में यह नीति रखनी चाहिए कि बैल-शक्ति में कमी आये बगैर उनकी दूध-शक्ति जितनी भी अधिक-से-अधिक मात्रा में बढ़ायी जा सके, बढ़ानी चाहिए।

४. दुग्ध-प्रधान नस्लें भारत-विभाजन के कारण बहुत घट चुकी हैं। इस समिति की निश्चित राय है कि सिलेक्टिव ब्रीडिंग द्वारा इन नस्लों में उच्चतम सीमा तक दूध-शक्ति बढ़ानी चाहिए, और उनका उपयोग अविकसित क्षेत्रों के मवेशियों के विकास में करना चाहिए।

इस नीति का असर अखिल भारत पशु-प्रदर्शनी या उसके द्वारा आयोजित पशु-प्रदर्शनियों या प्रादेशिक पशु-प्रदर्शनियों—सब पर हो।

गाय के दूध की विशेषता

१. भैंस के दूध के मुकाबले गाय का दूध माता के दूध के ज्यादा नजदीक है। अतः मनुष्यों के लिए गाय का दूध अधिक लाभदायी है, यह बात नीचे के तख्ते से मालूम होगी :

	पानी	प्रोटीन	स्नेह	शर्करा	खनिज	कुल घन पदार्थ
माता	८७·५८	२·०१	३·७४	६·३७	०·३०	१२·४२
गाय	८७·२७	३·३६	३·६८	४·६४	०·७२	१२·७३
भैंस	८१·६२	४·२५	७·५५	४·७५	०·८६	१८·८

२. कॅलशियम, सोडियम, पोटैशियम, कॉपर, झिंक और मॅगनीज, ये धातुएँ सबके दूध में मिलती हैं, लेकिन लोहा, सल्फर

और आयोडिन, ये केवल गाय के दूध में ही मिलती हैं, भैंस के दूध में नहीं।

३. गाय के दूध में विटामिन अधिक होते हैं।

४. गाय के दूध में लेक्टोकोकस वेसिलिस जल्दी बढ़ते हैं, इस कारण गाय का दूध सुपाच्य और स्फूर्तिदायक होता है। दही का जल्दी जमना इसका प्रमाण है। गाय के दूध का दही जल्दी जमता है।

५. भैंस के घी के मुकाबले गाय के घी में आँख को ज्योति देनेवाला क्रोटीन दसगुना होता है। भैंस के घी में अपचनीय अंश ४४ प्रतिशत होता है, जब कि गो-घृत में वह ३६ प्रतिशत होता है। इसके अलावा गो-घृत में औषधि-गुण भी काफी मात्रा में होते हैं।

६. गाय की प्रकृति मनुष्य-प्रकृति से मिलती-जुलती होती है। गाय प्यार को समझती है। गाय का बच्चा हमारी माताओं की तरह ९ महीने १० दिन में जन्मता है। जो औषधियाँ मनुष्य पर काम करती हैं, वे ही औषधियाँ अधिक मात्रा में गाय पर लागू होती हैं। इस तरह मनुष्य-प्रकृति से गाय अधिक नजदीक होने के कारण मनुष्य के लिए गाय का दूध-घी अधिक लाभदायी होता है।

७. वस्तुस्थिति यह है कि जो गुण-दोष माता में होते हैं, उनका असर दूध में होता है; फिर भले ही उनमें के कुछ गुण-दोष सायन्स की पहचान में आवें या न आवें। सांड और गाय में चपलता, स्फूर्ति, तेज, बुद्धिमत्ता दीखती है। इससे उल्टे भैंस और भैंसे में जड़ता, स्थूलता और बुद्धिहीनता दीखती है। इन गुणों का असर दूध में आये बिना नहीं रह सकता।

पिछले बारह वर्षों से वर्धा में गाय के दूध का प्रयोग हो रहा है। शहर में भी सैकड़ों लोग गाय के दूध का सेवन करते हैं। अनुभव से यह देखा गया है कि गाय के दूध का सेवन करने से सभी स्त्री-पुरुष, खासकर बच्चे विशेष निरोग रहे। आज दुनिया के अमेरिका, यूरोप आदि खण्डों में केवल गाय के घी-दूध का ही उपयोग किया जाता है। भैंस वे रखते ही नहीं। वे मनुष्य के लिए भैंस का दूध लाभदायी नहीं मानते।

गाय का दूध स्वास्थ्य के लिए निश्चित रूप से लाभदायी है, इसमें मुझे कोई शक नहीं था, पर भैंस का दूध अधिक ताकतवर होगा ऐसी शंका मन में थी। लेकिन एक बार बैंगलोर में देखा कि घुड़दौड़ के लिए दस-दस, बीस-बीस हजार की कीमत के घोड़े-घोड़ी तैयार करने का जो फार्म है, उस पर जो सांड घोड़ा रखा जाता है, उसे विशेष रूप से गाय का दूध पिलाया जाता है। जाँच करने पर मालूम हुआ कि भैंस का दूध पिला देने से दौड़ के बीच में ही घोड़े का दम टूट जाता है। गाय के दूध में ही अंत तक दम कायम रखने की शक्ति है।

यह बात सुनने के बाद विश्वास हो गया कि भैंस के दूध के मुकाबले ताकत भी गाय के दूध में ही अधिक है। बाद में आगरा के सेठ अचलसिंहजी से भेट हुई। वे बड़े पहलवान हैं। उन्होंने भी अपना अनुभव बताया कि पहले वे भैंस का दूध इस्तेमाल करते थे। तब सुस्ती अधिक रहती थी और काम की ताकत कम। जब से गाय का दूध शुरू किया है, अत्यंत स्फूर्ति मालूम होती है और इतनी ताकत मालूम होती है कि काम से थकान आती ही नहीं।

गाय और भैंस

अब सवाल यह है कि भैंस का क्या किया जाय। क्या वह

अपवित्र है, उसका दूध बुरा है या देश को उसकी जरूरत नहीं है ? उसको कत्ल कर दिया जाय ? यह शंका ठीक नहीं है। छोटे बच्चों के पालन पर विशेष ध्यान देने के लिए कहने का अर्थ यह नहीं होता कि बड़े बच्चों को मरने दिया जाय या मार दिया जाय। उसका इतना ही अर्थ है कि बड़े बच्चे अपने को सँभालने में समर्थ हैं, अभी समाज को छोटों की सँभाल करना जरूरी है। इसी तरह संघ भैंस के प्रश्न को उपयोगिता व आवश्यकता की दृष्टि से देखता है। संघ का भाव यह नहीं है कि धार्मिक दृष्टि से गाय पवित्र है और भैंस अपवित्र है।

हमारा किसान खेती के लिए बैल और दूध के लिए भैंस, इस तरह गाय-बैल, भैंस-पाड़ा, दोनों जोड़ी का बोझ नहीं उठा सकता। आज देश में चारे की कमी है। उसे खेती और दूध, दोनों काम एक ही जोड़ी से लेने चाहिए। जिस तरह हम एकांगी गाय को भाररूप मानते हैं और उसे सर्वांगी बनाने का प्रयत्न करते हैं, उसी तरह जहाँ भैंस के नर (पाड़े) खेती में काम नहीं आते हैं, वहाँ वह एकांगी हैं, भाररूप हैं। जहाँ नर (पाड़े) खेती के काम में आते हैं वहाँ भैंस सर्वांगी अर्थात् पूर्ण उपयोगी समझी जायगी। वही स्थान उसके लायक है। हम भैंस को मारना नहीं चाहते। उसे उचित स्थान पर रखना चाहते हैं। गाय आज गिरी हालत में है। उसे सहारे की प्रथम जरूरत है। इसलिए हम पूरी शक्ति गाय को उठाने में ही लगाना चाहते हैं। इस बारे में पू० बापूजी ने संघ के प्रथम सम्मेलन में जो भाषण किया था, वह यहाँ दिया जाता है ताकि उन्हींके शब्दों में संघ की नीति स्पष्ट हो जाय :

"मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप और हम गाय को न बचा सके तो गाय और भैंस, दोनों को नहीं बचा सकेंगे और दोनों को साथ-साथ

बचाने की कोशिश करना संभव नहीं है। साथ-साथ बचाने जायँगे तो भैंस गाय को खा जायगी। इन दोनों जानवरों में अभी तक गाय की ज्यादा उपेक्षा की गयी है। इसलिए गाय के बचाने पर ही जोर देना चाहिए। यदि जमनालालजी को एक करोड़ रुपया मिल जाय तो भी उस वक्त तक हमारा उद्देश्य पूरा नहीं होगा, जब तक कि लोगों के और खास तौर पर पिंजरापोल और गौशाला चलानेवाले लोगों के विचार बदलकर हम उन्हें अपने खयाल के न बना लेंगे।

"बहिष्कार का कोई सवाल नहीं है। भैंस को तो मारने का प्रश्न ही नहीं है। मारने की बात ऐसी है जो पश्चिमवालों को आसानी से सूझती है। यही कारण है कि वे घटिया गाय-बैलों को मारकर अपनी मुश्किल हल कर लेते हैं। लेकिन यह हल मेरे लिए किसी भी काम का नहीं। मेरा दृढ़ विश्वास है कि हम गोरक्षा का सच्चा शास्त्र सीख लें तो भैंस की और दूसरे जानवरों की रक्षा का शास्त्र हमें अपने-आप मालूम हो जायगा।

"यहाँ एक यह सवाल पैदा हो सकता है कि भैंसों का बहिष्कार कर दिया जाय, तो उनका और उनके मालिकों का क्या होगा? इस बारे में मैं कह सकता हूँ कि गाय की सेवा का उद्देश्य इस हद तक पूरा हो जाय, तो मैं भैंसों और उनके मालिकों को सँभाल लूँगा। अगर मिल-मालिक स्वेच्छा से अपनी मिलें बन्द कर दें या वे बन्द हो जायँ, तो मैं खुशी के मारे नाचूँगा, लेकिन भैंस रखनेवाले अपनी भैंस कत्ल कर डालें या वे नष्ट हो जायँ तो मुझे दुख होगा। पश्चिम के अर्थशास्त्र में नीति की गुंजाइश नहीं। हमारे अर्थशास्त्र का नीतिशास्त्र से मेल है और अगर मेल नहीं है तो होना चाहिए। मैं जो सिर्फ गाय की ही रक्षा पर जोर देता हूँ उसका कारण तो यह है कि गाय की बेजा उपेक्षा की गयी है। हालाँ कि मेरी राय में गाय आर्थिक दृष्टि से लाभदायक प्राणी हो सकता है। इस बात को साबित करने के लिए मुझे वेदों की सहायता नहीं चाहिए। यह ऐसा विषय है जिसमें वेदों के उपदेश को बुद्धि की कसौटी

पर करूँगा। बुद्धि मुझे विश्वास दिलाती है कि अगर मैं गाय को बचा लूँ तो गाय और भैंस, दोनों को बचा लूँगा। अगर कोई मुझे विश्वास करा दे कि गाय तो बच ही नहीं सकती और भैंस की ही रक्षा होनी चाहिए, तो मैं 'भैंस-सेवा-संघ' खोलने को तैयार हूँ। लेकिन बात तो उल्टी ही है। भैंस को विशेष संरक्षण की जरूरत नहीं, गाय को जरूरत है। भैंस और बकरी भी गाय की तरह ही मेरी माता हैं, मगर मैं जानता हूँ कि बेचारी बकरी तो बच ही नहीं सकती और गाय को बचाने की बड़ी जरूरत है और जब हम गाय को बचा लेंगे तो भैंस की रक्षा अपने-आप हो जायगी।"

स्थानीय गाय

ऊपर के विचारों से यह स्पष्ट हो जाता है कि पूज्य बापूजी भैंस को भी बचाना चाहते हैं, लेकिन उसे बचाने के लिए वे प्रथम गाय को बचाने की आवश्यकता मानते हैं। लोग पूछते हैं कि गाय को ही बचाना है तो जहाँ-तहाँ की रद्दी गायों के पीछे शक्ति लगाने की अपेक्षा पंजाब आदि भागों से खूब दूध देने-वाली, और जिनके बैल भी अच्छे हों, ऐसी सर्वांगी गायें लाकर उन्हीं गायों को सब जगह बढ़ाना चाहिए। आज कई जगह इस तरह से काम चल रहा है। सरकार के भी बहुत से फार्म इसी तरीके से पर-प्रान्तीय गायें रखकर चलते हैं। लेकिन संघ की राय है कि एक स्थान की गायें दूसरे स्थान में जाने पर उनको वहाँ की आबोहवा अनुकूल नहीं पड़ती। अपने स्थान के मुकाबले वहाँ जाने पर उनका दूध घट जाता है। वे वहाँ पर पनप नहीं सकतीं। उनकी जनन-शक्ति कम हो जाती है। बछड़े कम बचते हैं। उन पर सांसर्गिक रोगों का असर जल्दी होता है और उनकी संतानें पीढ़ी-दर-पीढ़ी कम दूध देनेवाली होती हैं। बाहर की गायों के लाये जाने के कारण स्थानीय नस्ल की ओर लापरवाही

की जाती है, जिसके कारण उनकी हालत दिन-व-दिन गिरती जाती है। यदि ऐसा कड़ा नियम वना दिया जाय कि एक स्थान की मादा दूसरे स्थान पर नहीं ले जायी जा सकती तो आज जो ह्रास हो रहा है, वह रुक सकता है और स्थानीय गायों की तरफ विशेष रूप से ध्यान दिया जाय, तो दिन-व-दिन उन्नति हो सकती है।

गत कुछ वर्षों से वर्धा के आसपास गोपालन सम्वन्धी प्रयोग किये जा रहे हैं। स्थानीय गौलाऊ नस्ल की गायें सिर्फ वछड़ों के लिए पाली जाती थीं। इन गायों का दूध वढ़ाने के थोड़े-से प्रयत्न हुए। फलस्वरूप इस जाति की गायें दूध कुछ अधिक देने लगी हैं तथा और भी अधिक दूध दे सकेंगी, ऐसा विश्वास होने लगा है। इतना ही नहीं, जव से इन गायों का दूध निकालना शुरू किया गया तव से इनकी खिलायी-पिलायी अच्छी होने लगी और उनसे पैदा होनेवाले वछड़े भी अधिक स्वस्थ और मजवूत होने लगे।

यदि हम व्यापक दृष्टि से विचार करें तो यह स्पष्ट समझ में आ सकता है कि एक स्थान की कुछ अच्छी गायों को दस-वीस स्थानों में वितरण करने से समग्र गोवंश की उन्नति किसी भी हालत में नहीं हो सकती और विना पूरे गोवंश की उन्नति के सारे देश में दूध की वृद्धि कैसे हो सकती है ? इधर-उधर की गायें लाकर दो-चार गौशालावाले भले ही उन्नति दिखा सकते हैं, लेकिन सही उन्नति सारे गोवंश पर याने स्थानीय गायों पर ध्यान देने से ही हो सकती है। यह काम वहुत धीमा है। आरम्भ में काफी कठिन है। लेकिन सफलता की सही कुंजी इसीमें है, ऐसा संघ का विश्वास है और सभी विशेषज्ञों एवं अनुभवियों ने भी संघ को यही सलाह दी। इसलिए संघ ने अपने द्वितीय सम्मेलन में निम्न प्रस्ताव स्वीकृत किया :

"इस सम्मेलन की राय है कि गो-जाति की उन्नति और रक्षण की दृष्टि से स्थानीय नस्ल के ही चुने हुए पशुओं को लेकर नस्ल-सुधार का काम करना चाहिए। वही वहाँ की आबोहवा में अच्छी तरह टिक और पनप सकते हैं और बड़े दायरे में गो-जाति का सुधार स्थानीय नस्ल पर ही निर्भर है। पर इस समय जहाँ कोई विशेष स्थानीय नस्ल न रह गयी हो वहाँ बारीकी से पूर्व नस्ल के ह्रास के कारणों की खोज की जाय और वहाँ के लिए उपयुक्त नस्ल स्थिर करने में अनुभवियों की सलाह से सावधानी-पूर्वक प्रयोग शुरू किया जाय।"

स्थानीय नस्ल किसे मानें, इस बारे में अनेक मतभेद हो सकते हैं। स्थानीय नस्ल से हमारा आशय है 'स्थानीय खेती जोतने में स्थानीय खुराक पर जो बैल अधिक-से-अधिक काम देते हों वे बैल और उनकी माताएँ।'

बूढ़े व अनुत्पादक पशु

स्थानीय गायों की तरक्की के लिए यह आवश्यक है कि अच्छे सांड के साथ-साथ उनको चारा भी भरपेट मिले। देहातों में या शहरों के आसपास जो चारा होता है, उसमें आज उपयोगी और अनुपयोगी, दोनों तरह के पशु हिस्सा बँटाते हैं। यदि अनुपयोगी पशु वहाँ से हटा दिये जायँ तो उपयोगी पशुओं के लिए चारे की सहूलियत हो जायगी। इन अनुपयोगी पशुओं को हटाने के दो रास्ते हैं। जो लोग गोवधबन्दी नहीं मानते वे तो कत्ल करने का सरल रास्ता अख्तियार कर लेते हैं। वह रास्ता आसान है और अर्थशास्त्र की दृष्टि से लाभदायी भी है; लेकिन हमने अपने लिए वह रास्ता बन्द कर दिया है। इसलिए हमारा काम कठिन है और सारी दुनिया के रास्ते से अलग स्वतन्त्र रास्ता खोजने का है। बूढ़े पशुओं के लिए हमारी नीति है कि दूर जंगलों में गोसदन

कायम किये जावें। वहाँ चारे-पानी की व्यवस्था हो। वहाँ सांड न रखा जावे, इससे बेकार पशुओं की उत्पत्ति रुक जायगी। वहाँ चर्मालय रहे, उसमें चमड़ा निकालने की, कमाने की तथा हाड़-मांस, चरबी सब चीजों का पूरा-पूरा उपयोग करने की व्यवस्था हो। वहाँ खेती भी हो ताकि गोबर व गोमूत्र के खाद का पूरा लाभ मिल सके। गोसदन स्वावलम्बी तो नहीं चल सकते, लेकिन इस तरह खर्च में काफी कमी की जा सकेगी तथा देहात व शहरों के उपयोगी पशुओं पर इनके चारे का बोझ नहीं पड़ेगा। खर्च कम करने के सारे तरीकों का इस्तेमाल करने से गोसदनों पर जो रकम खर्च होगी, वह भी काफी बड़ी होगी। वह कहाँ से आवे, यह सवाल रहता है। आज बड़े-बड़े शहरों में व्यापारियों ने स्वयं प्रेरणा से व्यापार पर धर्मादा के नाम से गोरक्षणों के खर्च के लिए लागें लगा रखी हैं, उन लागों को कानूनी बना दिया जावे। जिन शहरों में ये लागें न हों वहाँ भी लगा दी जावें। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था चलती हो वहाँ आधी आमदनी उसे दे दी जाय व आधी गोसदनों के लिए। जहाँ गोरक्षण संस्था न चलती हो वहाँ की पूरी आमदनी गोसदनों के लिए रहे। इस तरीके से स्थायी व्यवस्था हो सकती है। चालू गोरक्षण संस्थाओं को इसमें आपत्ति नहीं होनी चाहिए, क्योंकि उनके भी काफी पशु गोसदनों में जावेंगे।

बूढ़े पशुओं का प्रश्न सदा रहेगा और उसका हल भी गोसदन से ही हो सकेगा। बहुत से बूढ़े पशुओं को तो लोग अपने-आप ही पाल लेंगे, क्योंकि वह अधिक दिन नहीं जीते। उनसे जन्म भर आमदनी भी मिल गयी होती है। लेकिन जो पशु अभी जवान होने पर भी खाते हैं और उतना उत्पादन नहीं देते, ऐसे अनुत्पादक पशुओं का प्रश्न बड़ा कठिन है। उसको हल करने के लिए संघ ने दो तरीके सोचे हैं :

१. बुरे सांडों को बधिया करके अच्छे सांडों से ही बच्चे लिये जावें ताकि नयी पीढ़ी में दूध बढ़े व बैल अच्छे निकलें, और वे अनुत्पादक न रहें। जो गायें अच्छे बछड़े देने के काबिल न हों उन्हें गोसदन में रखकर उनका प्रजनन बन्द किया जाय।

२. ऐसे कम उत्पादक पशुओं में गायें ही अधिक होती हैं। बैलों से तो काम मिल ही जाता है। ऐसी गायों से जोतने का काम लिया जाय, तो कुछ हद तक समस्या हल हो सकती है। आज मैसूर राज्य में इस तरह गायों से काफी तादाद में खेत जोतने का काम लिया जाता है। बैलों की तरह नाथ डाली जाती है और बैलों की बराबरी में भी जोत देते हैं। लेकिन भारी तथा पानी खींचने आदि के अधिक शक्तिवाले काम नहीं लिये जाते।

इस विषय में अभी सावधानी से प्रयोग करने की जरूरत है कि इसका गाय के दूध-उत्पादन व प्रजोत्पादन पर क्या असर होता है। पूरी तरह से शास्त्रीय संशोधन के बाद ही इसका प्रचार किया जा सकता है।

गोसदनों में बूढ़ी या लावारिस गायें ही अधिक जावेंगी, इसलिए पशुओं की मृत्यु-संख्या भी वहाँ अधिक होगी। उन मृत पशुओं के चमड़े, हाड़, मांस, चरबी, सींग आदि का पूरा उपयोग किस तरह लिया जाय, इसकी शिक्षा देने के लिए संघ की ओर से नालवाड़ी, वर्धा में गोसेवा-चर्मालय चल रहा है। जानकारी के लिए उसका थोड़ा पूर्व इतिहास यहाँ देना उचित होगा।

गोसेवा-चर्मालय

गोवधबंदी कराने की दृष्टि से गोवध के कारणों की खोज करते हुए पता चला कि हिन्दुस्तान में, खासकर मध्यप्रदेश में जो गोवध चल रहा है, उसमें से अधिकांश गायें केवल चमड़े के लिए

ही मारी जाती हैं। कत्ल किया हुआ चमड़ा तुरंत पकाने के लिए चला जाता है, कारण वह अच्छा मुलायम बन जाता है और उसका मूल्य भी काफी अधिक मिलता है। लेकिन अपने-आप मरनेवाले पशु का चमड़ा तुरंत पकाने के लिए नहीं ले जाया जा सकता। पहले उसे नमक लगाकर सुखा लिया जाता है और चार-छह महीने बाद फिर वह पकाने के लिए चर्मालय में जाता है। चमड़ा धूप में सुखाया गया हो तो पकाने में सड़कर गल भी जाता है। पशु किसी-न-किसी बीमारी से या अत्यधिक बूढ़ा होकर मरता है, इस कारण भी उसका चमड़ा खराब हो जाता है। मरे हुए जानवर को उठाकर ले जाते समय घसीटकर ले जाने में छिलकर चमड़ा फटता और खराब होता है। जानवरों की मृत्यु-संख्या बरसात में अधिक होती है। उस समय सुखाने का उचित प्रबंध न होने के कारण उसे गीला ही नमक लगाकर अधिक दिनों तक रख छोड़ते हैं। ऐसे अनेक कारणों से मृतक पशु का चमड़ा खराब होता रहता है।

हरिजन-आंदोलन के दिनों में श्री गोपालरावजी वालुंजकर की नजर में यह बात आयी। पू० बापूजी व विनोबाजी से उन्होंने बात की। यह सोचा गया कि कत्ल किया गया चमड़ा लोग काम में न लें तो गोवध कम हो और लोगों को मृतक चमड़ा पहनना हो तो उसे अच्छे-से-अच्छा पकाने की व्यवस्था होनी चाहिए। इस विचार से सन् १९३५ में नालवाड़ी, वर्धा में पूज्य बापूजी ने गोसेवा-चर्मालय की स्थापना की और श्री गोपालरावजी ने श्री सतीशचंद्रदास गुप्ता की सहायता से अच्छी-से-अच्छी चमड़ा-पकाई, रँगाई, क्रोम पकाई, केशदार पकाई आदि की व्यवस्था की। प्रथम यह चर्मालय ग्राम-सेवा-मंडल ने शुरू किया। पीछे गांधी सेवा-संघ के मातहत चला और १९४१ में फिर से ग्राम-

सेवा-मंडल के पास आया। अब छह साल से वह गोसेवा-संघ के अधीन चल रहा है। सन् १९३८ में कांग्रेस मंत्रिमंडल बना तब मध्यप्रदेश सरकार ने श्री गोपालरावजी की प्रेरणा से वर्धा, नागपुर और यवतमाल में मृतक पशु केन्द्र खोले। लेकिन सन् १९३९ में कांग्रेस मंत्रिमंडल ने इस्तीफा दिया, तब तीनों केन्द्र चर्मालय के अधीन किये गये। आज वर्धा व यवतमाल केन्द्रों में पूर्ववत् चमड़ा उतारना और मांस, चरबी, हड्डी आदि की खाद बनाने का कार्य जारी है। इस चर्मालय के चलाने में संघ की नीति यह है कि मृत पशु के चमड़े का, मांस का, हड्डी का, चर्बी का, सब उपयोग अधिक-से-अधिक लिया जाय ताकि उतनी रकम गाय के उत्पादन में अधिक जमा हो। चर्मालय में कत्ल की गयी गाय, बैल, भैंस का चमड़ा काम में नहीं लिया जाता। संघ के सभासदों के लिए यह नियम आवश्यक रखा है कि गाय, भैंस के कत्ल किये गये चमड़े की कोई चीज इस्तेमाल न करें। अन्य पशुओं के बारे में यह नियम नहीं है, क्योंकि उनका कत्ल रोक सकने की हमें कोई उम्मीद नहीं है।

शहरों से दुधारू पशुओं का हटाना

गोवंश के ह्रास एवं गोवध के कारणों की अधिक खोज करने से पता चला कि पशुओं की दुधारू नस्ल का विनाश सबसे अधिक बड़े शहरों में हो रहा है। आज तक यह समझ थी कि अंग्रेजी फौज के लिए मुसलमानों द्वारा कसाईखानों में बहुत-सी गायें कत्ल होती रहीं, इसलिए गोवंश का ह्रास हो रहा है, अच्छी गायें कट रही हैं और बुरी बच रही हैं। लेकिन जाँच में यह बात सामने आयी कि कसाईखानों में तो आर्थिक लाभ की दृष्टि ही अधिक रही है और वहाँ चुन-चुनकर सस्ती गायें ही मारी गयी

हैं। मुसलमान या अंग्रेजी फौजों के लिए जो गायें काटी जाती थीं, वे मांस की दृष्टि से तंदुरुस्त, मोटी-ताजी और जवान देखकर ली जाती थीं; लेकिन वे लोग भी अधिक दूध देनेवाली गायों को कभी कत्ल नहीं करते थे। तब सवाल उठता है कि अच्छे दूध की नस्ल कैसे नष्ट हुई ?

अधिक जाँच के बाद पता लगा कि बड़े-बड़े शहरों में दूध के लिए अच्छी-से-अच्छी गायें ले जायी जाती हैं और वे दूध बन्द होने के बाद कसाई के हाथ बेच दी जाती हैं। इस तरह से भारत का अच्छे-से-अच्छा गोधन इन शहरों की बलिवेदी पर भस्म हो रहा है। गोसेवा-संघ ने पूज्य बाबू राजेन्द्रप्रसादजी की अध्यक्षता में इस विषय की जाँच के लिए एक समिति नियुक्त की थी। उस समिति ने कलकत्ता और बम्बई, दो जगह की जाँच की। उसकी रिपोर्ट स्वतंत्र रूप से प्रकाशित हुई है। जाँच में यह पाया गया कि बड़े शहरों में गायों की हालत बहुत बुरी रहती है। न उनके निवास के लिए पूरा स्थान होता है, न दिन में घूमने को। बछड़े-बछड़ियों को मार दिया जाता है; क्योंकि उन्हें खिलाने-पिलाने में जितना खर्च होता है, उतनी उनकी कीमत नहीं आती। गायों को घनारने के लिए सांड की कोई सुविधा नहीं है, कृत्रिम उपायों से इतना दूध निकाला जाता है कि गाय जल्दी गरमाती भी नहीं। अक्सर दूध बन्द होने के बाद गाय कसाई के हाथ बेच दी जाती है, सूखी गाय को ब्याने तक आठ-नौ महीने रखने और खिलाने में जितना खर्च होता है उससे कम कीमत में नयी गाय मिल जाती है। इसलिए वहाँ के ग्वाले पंजाब, सिंध आदि से नयी गायें खरीदते हैं और पुरानी कसाई को बेच देते हैं। इस तरह देश की अच्छी-से-अच्छी दुधारू गायें और उनकी सन्तानें नष्ट कर दी जाती हैं। देश के

बढ़िया गोधन के विनाश का सबसे बड़ा कारण यही है। आज अच्छी दुधारू गाय का मिलना कठिन हो गया है, इसलिए शहर के दूधवाले गायों के स्थान पर दुधारू भैंसों को शहरों में ले जाने लगे हैं और उनकी भी वही बुरी हालत होने लगी है। आज वम्बई में ६५ फीसदी भैंस हो गयी हैं और कलकत्ते में ५० फीसदी के करीब। इस विनाश को रोकने के लिए संघ को यह स्पष्ट राय है कि वड़े शहरों में दुधारू पशुओं का रखना कतई बन्द कर देना चाहिए। जिन लोगों के पास वहुत कुछ खुली जमीन हो और जो लोग सूखे पशु पाल सकने में समर्थ हों, ऐसे कुछ लोगों को अपवाद के तौर पर इजाजत दी जा सकती है। शहरवालों को चाहिए कि शहर में पशु रखने के बदले देहातों से दूध शहर में लाने का इन्तजाम कर लें। मोटर, ट्रेन आदि से सौ-पचास मील दूर तक दूध लाया जा सकता है। गाय-भैंस तो वहीं रहनी चाहिए जहाँ पर खेती की जमीन है, चारा-पानी सस्ता है और जहाँ सूखे जानवर को पालने में आसानी है। ऐसे स्थानों पर गाय रखने से गाय बचेगी, खुली हवा में फिरनेवाली गाय का दूध भी अच्छा मिलेगा, खेती को अच्छा खाद मिलेगा, खेती की उन्नति होगी, अनाज की उपज बढ़ेगी। शहरों के वाहर गाय-भैंसों के चले जाने से शहरवाले गोवर और मूत्र की गन्दगी से तथा वीमारियों से वच जावेंगे। यह ऐसा तरीका है जिसमें गाय और शहरवाले, दोनों का लाभ है। दोनों वच जाते हैं।

खेती-गोपालन अभिन्न

सही वात तो यह है कि खेती और गाय, दोनों की जोड़ी है। दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं। दोनों एक सिक्के के दो वाजू हैं। दोनों एक-दूसरे के पूरक हैं। खेती को गोपालन का जोड़ मिल

जाने से खेती के लिए अच्छे बैल पैदा होकर खेती की जुताई अच्छी होती है। गोबर और गोमूत्र में कचरा मिलाकर बड़ी तादाद में मिश्र खाद बनायी जा सकती है, जिससे खेती की उपज बढ़ती है, और उपज-शक्ति कायम रहती है। इन पशुओं के कारण अनाज से बचे हुए बेकार डंठल काम में आ जाते हैं और उनकी कीमत आ जाती है। किसान को बैल और गाय के सहारे से बचत के दिनों में आमदनी के कई काम मिल जाते हैं। उत्तर-प्रदेश में सन् १६४१ से १६४६ तक छह जिलों में केवल खेती और गोपालन के साथ खेती, इन दोनों के प्रयोग किये गये थे। उस बारे में उत्तर-प्रदेश की सरकार ने गोपालन और खेती के नाम से एक पर्चा (नं० १८८) निकाला है। उसमें बताया है कि ५ वर्ष के बाद यह सिद्ध हुआ कि गोपालन करनेवाले किसानों की आय कहीं-कहीं साधारण किसानों के मुकाबले तिगुनी से भी अधिक हो गयी। गोपालन के साथ खेती करनेवालों की आय फी एकड़ ११०।≡) पड़ी है और साधारण खेती की औसत आय फी एकड़ ५१॥−) पड़ी है।

इन प्रयोगों से स्पष्ट है कि गाय का जोड़ मिलने से खेती की उपज बढ़ती है। कई जगह यह सवाल उठाया जाता है कि हम मनुष्यों को खिलायें या गाय को खिलायें। ऊपर के प्रयोगों से यह स्पष्ट होता है कि यह सवाल ही गलत है। हम गाय को जो कुछ भी खिलाते हैं, वह अपने लिए ही खिलाते हैं। गाय पर मेहर-बानी नहीं करते। जितना उसे खिलाते हैं, उसके मुकाबले कई गुना अधिक लाभ हमें मिलता है! जैसे बीज बोने को धूल में अनाज फेंकना नहीं कहा जायगा, वैसे ही गाय को खिलाना भी। जैसे गाय से खेती को लाभ है, वैसे गाय को भी खेती से लाभ है। वह सुखमय जीवन खेत पर ही बिता सकती है। जहाँ खेती

नहीं है, वहाँ चारादाना महँगा होगा। वहाँ अच्छी-सी गाय का भी आज के अर्थशास्त्र में खड़ा रहना कठिन होता है। हमने वर्धा के आसपास दो-चार जगह, जहाँ खेती के लिए काफी जमीन थी, लेकिन उपज अच्छी नहीं थी, गौशालाएँ खोलीं और नतीजा यह हुआ कि वहाँ की जमीनें उपजाऊ बन गयी हैं। संघ की निश्चित राय है कि खेती और गोपालन एक-दूसरे के पूरक हैं। वे साथ-साथ चलने चाहिए याने हर किसान के पास गायें होनी चाहिए और हर ग्वाले के पास खेती की जमीन। इसी अनुभव से संघ ने गोपालन के साथ-साथ कृषि का काम भी हाथ में लिया है। और अब इस विभाग का नाम भी 'कृषि-गोसेवा विभाग' कर दिया है। भगवान् श्रीकृष्ण ने भी गीता में कृषि के साथ गोसेवा जोड़ी है : "कृषि गोरक्ष वाणिज्यं।"

स्वावलम्बन

खेती के जोड़ से ही गाय स्वावलम्बी बन सकती है। गाय को जिन्दा रखने के लिए उसका स्वावलम्बी बनना आवश्यक है। आज का अर्थशास्त्र केवल माँग और पूर्ति की बुनियाद पर खड़ा है। उस पर कोई भरोसा नहीं किया जा सकता। देश के हित में आज नहीं तो कल उसे ठीक करना ही होगा। सच्चे अर्थ-शास्त्री की दृष्टि से हम सोचें तो गाय कभी घाटे का सौदा नहीं हो सकती। अनाज हम खा लें और उसके बेकार डंठल, भूसा आदि जो फेंकने और जलाने योग्य वस्तु बचती है, उसे गाय खाय और उसका बढ़िया-से-बढ़िया खाद्य-पदार्थ दूध बनाकर दे, यह कोई छोटी-मोटी सेवा नहीं है। आज के बढ़े हुए यन्त्रयुग में भी ऐसी कोई मशीन अभी तक नहीं निकली है, जिसमें कड़बी, भूसा डाल दें और उसका दूध बन जाय। गाय हमें ऐसा इंजन देती है जिसके बनाने के लिए लोहे की जरूरत नहीं, कारीगर या कार-

खाने की जरूरत नहीं और जिसे चलाने के लिए ईरान के तेल की आवश्यकता नहीं। गाय हमें ऐसा खाद देती है जिसकी बराबरी की दूसरी कोई खाद नहीं है। हजारों वर्षों तक भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रख सके, ऐसी खाद किसी यन्त्र ने नहीं बनायी है। केवल गाय ही ऐसी खाद देती है। गाय का दूध भी माँ के दूध से मिलता-जुलता होता है। मनुष्य के लिए अधिक-से-अधिक अनुकूल दूध गाय का ही होता है। इतना लाभदायक प्राणी कभी भी सच्चे अर्थशास्त्र में बोझरूप नहीं हो सकता। यदि आज के पैसे के अर्थशास्त्र में वह बोझरूप होता हो तो हमें सोचना चाहिए कि इस अर्थशास्त्र में ही कहीं-न-कहीं कोई गड़बड़ी है और उसे सुधारना आवश्यक है।

सच्चे अर्थशास्त्र की दृष्टि से यह बात सही है कि गाय कभी बोझरूप नहीं होती। फिर भी आज के अर्थशास्त्र में गाय को स्वावलंबी बनाने का हमारा प्रयत्न होना चाहिए। संघ की यह निश्चित राय है कि अर्थशास्त्र में गाय स्वावलंबी बनेगी, तभी वह जी सकेगी। स्वावलंबी बनना याने खर्च की अपेक्षा अधिक पैदा कर देना। गाय को स्वावलंबी बनाने के लिए संघ ने दो रास्ते सोचे हैं। गाय का उत्पादन बढ़ाना यानी अधिक दूध देने की शक्ति और अच्छे बछड़े देने की शक्ति बढ़ाना, और उसके उत्पादन का यानी घी-दूध और बैल का बाजार कायम रखना, यानी उसकी माँग के साथ-साथ उसकी कीमत कायम रखना।

गोव्रत और जमाया हुआ तेल

ऊपर बताया है कि अर्थशास्त्र में गाय टिक सके, इसके लिए दो उपायों की जरूरत है। एक है गाय का उत्पादन बढ़ाना और दूसरा है उसकी उत्पादित चीजों के लिए बाजार बनाना। उत्पादन बढ़ाने के प्रश्न की चर्चा हम आगे करेंगे, यहाँ उसके बाजार

कायम रखने की बात का विचार करें। दूध के रूप में दूध बहुत कम परिमाण में केवल शहरों में बिकता है। अधिकांश देहातों में दूध जमाकर घी निकालकर भी बेचते हैं और छाछ काम में ले लेते हैं। आज के बाजारों में घी बेचने में दूध की कीमत कम मिलती है। यहाँ इतना बता देना आवश्यक है कि राष्ट्र-हित की दृष्टि से दूध बेचने की अपेक्षा घी बेचना ही हम अधिक पसंद करेंगे। इसमें किसान के घर में छाछ रह जाती है जो उसके और उसके बच्चों के लिए अमृत के समान कीमती है।

दूध का भाव आज ६ आने से १ रुपया सेर तक का है। साधारणतया गाय के २७ सेर दूध में से एक सेर घी निकलता है। दही जमाने, बिलोने आदि की मेहनत अलग होती है। छाछ की कीमत एक-तिहाई से अधिक नहीं मिलती, यानी घी की कीमत १८ सेर दूध और घी निकालने की मजदूरी दोनों के बराबर होती है। कुछ गायों के दूध में घी की मात्रा कुछ अधिक रहती है। सारा विचार करने पर भी एक सेर घी की लागत १६ से २० सेर दूध के बराबर समझनी चाहिए। भैंस के दूध में घी का परिमाण गाय के घी से पौने दोगुना होता है। १६ सेर दूध में एक सेर घी मानते हैं यानी छाछ का मूल्य निकालकर घी की कीमत ६ से १२ सेर दूध के बराबर पड़ती है।

आज दूध की कीमत कायम है, क्योंकि उसके मुकाबले कोई नकली दूध नहीं निकला है। विदेशी दूध, पाउडर के डिब्बों का कुछ बुरा असर होता है, लेकिन दूध की इतनी अधिक कमी है कि अच्छे दूध की बिक्री का बाजार कायम है। लेकिन जमाये हुए तेल (वनस्पति) के कारण घी के बाजार पर गहरा असर पड़ा है और पड़ रहा है। घी भी जरूरत से बहुत कम पैदा होता है। इसलिए वनस्पति के बावजूद वह खप सकता है। लेकिन वन-

स्पति की उसमें जो मिलावट होने लगी है, वह इतनी बढ़ गयी है कि अच्छे घी के मिलने की आशा छूटती जा रही है और लोग मिलावटी घी की अपेक्षा सीधा वनस्पति लेना अधिक पसंद करने लगे हैं। नतीजा यह होता है कि घी का बाजार खत्म होता जा रहा है। देश में 'वनस्पति' के विरोध में भारी आन्दोलन हुआ, अखिल भारतीय कांग्रेस महासमिति ने अहमदाबाद में इसके विरोध में प्रस्ताव पास किया। लोक-सभा के दो-तिहाई से अधिक सदस्यों ने घी की मिलावट रोकने की दृष्टि से वनस्पति को गाढ़ा न करने की सिफारिश की, भारत के कोने-कोने से लोगों ने इसका विरोध किया, फिर भी देश का दुर्भाग्य है कि मिलावट रोकने के लिए खास कोई उपाय अभी तक नहीं निकल पाया। संघ ने इस बारे में काफी अध्ययन किया है। संघ की निश्चित राय है कि इस जमाये हुए तेल की अपेक्षा बिना जमाया हुआ रिफाइन तेल या घानी का ताजा तेल अधिक पोषक और सस्ता पड़ता है। स्वास्थ्य की दृष्टि से वनस्पति में खराबी होने-न-होने के बारे में अनेक मतभेद हैं, लेकिन ताजे तेल को सभी ने अच्छा माना है।

दूध या दूध-जन्य पदार्थों की नकलें बनाने का काम आज फुड रिसर्च संस्थाओं में हो रहा है। जैसे मूँगफली का दूध बनाना, खोवा बनाना, पेड़े बनाना, नकली घी-मक्खन बनाना, ये सारी चीजें असली दूध-घी के उत्पादन में बाधक होंगी। बाजारों का प्रसिद्ध नियम है कि बुरा सिक्का अच्छे को बाजार से खदेड़ देता है। वही नियम यहाँ भी लागू होगा। नकली माल असली को बाजारों से हटा देगा। लोगों को या शास्त्रज्ञों को पोषण की दूसरी चीजें तैयार करनी हों तो जरूर करें; पर उनके नाम अलग दें और उनका रंग-रूप भी दुग्ध-जन्य पदार्थों से अलग

बनावें, और उनकी विक्री उनके वास्तविक गुणों के भरोसे हो। दुग्ध-पदार्थों की प्रतिष्ठा का बेजा लाभ न उठाया जाय।

जिस तरह नकली पदार्थ बाजार को गिरा रहे हैं, उसी तरह आज बाजारों में गाय के दूध को भैंस का दूध पीछे खदेड़ रहा है। भैंस का और गाय का हमारी दृष्टि में क्या स्थान है, इसकी चर्चा पहले आ चुकी है। हमारा मत है कि गाय को सहारा देने की जरूरत है। स्पष्ट है कि हम जिस पशु का दूध खरीदेंगे, उसी पशु को हमारे पैसों से खाना मिलेगा। यदि हम चाहते हैं कि गोसेवा हो, गाय की उन्नति हो तो हमें चाहिए कि अपने घर में केवल गाय का ही घी-दूध काम में लायें। ऐसा करने से हमारे घर से जानेवाला पैसा गाय के पेट में जाकर गाय को बचायेगा। इस तरह चारों ओर गाय के दूध की माँग बढ़ेगी, तभी गोरस का बाजार कायम रहेगा। तभी गोपालन को उत्तेजन मिलेगा और गाय की सच्ची सेवा होगी। इन्हीं कारणों से गो-सेवा-संघ के सदस्यों के लिए यह नियम रखा गया है कि वे गाय के ही घी-दूध का उपयोग करें। हमारी राय में गोव्रत लेना गोसेवा का श्रीगणेश है। हर गो-प्रेमी को कम-से-कम अपने घर में तो गोरस का आग्रह रखना ही चाहिए।

कितने ही लोगों की धारणा है कि गाय का घी न मिले तो वनस्पति खा सकते हैं, लेकिन भैंस का घी नहीं। यह विचारधारा गलत है। गाय और भैंस, दोनों के घी को वनस्पति हानि पहुँचा रही है। इसलिए गाय के घी के व्रतवालों को भैंस का घी या वनस्पति, दोनों ही चीजें नहीं खानी चाहिए। लेकिन दोनों में चुनाव करना ही हो तो भैंस का घी खाना वनस्पति के मुकाबले हजार दर्जे अच्छा है।

गाय का दूसरा उत्पादन बैल है। आज ट्रैक्टर और मोटर-

ठेले बैलों का काम छीनने लगे हैं। इनका उपयोग करते समय यह देखना जरूरी है कि बैल-शक्ति बेकार न पड़ी रहे। जहाँ बैल-शक्ति पर्याप्त नहीं पड़ती है, वहीं उनका उपयोग किया जाय।

नंदी (सांड)

अर्थशास्त्र में गाय को स्वावलंबी बनाने का दूसरा रास्ता उसका उत्पादन बढ़ाना है। उत्पादन बढ़ाने में सांड का स्थान अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। अच्छे सांडों के आधार पर ही दुनिया भर के देशों ने पशु-उन्नति की है। सैकड़ों वर्षों के अनुभव का सार अंग्रेजी में इस प्रकार कहा है : The bull is half the herd (अकेला सांड आधी गौशाला के बराबर होता है।) हमारे यहाँ भी नंदी का बड़ा महत्त्व रहा है। सांड छोड़ने का कार्य महापुण्य माना गया है। लेकिन इस समय अच्छे सांडों के अभाव में देश का पशुधन गिरता जा रहा है। अयोग्य सांडों से फलने के कारण भावी पीढ़ी कम दूध और कम ताकतवाली पैदा हो रही है। ऐसे बेकार पशुओं की रक्षा करना असंभव है। इसलिए अच्छे सांड पैदा करना और उनसे ही गायें फलाने का आग्रह रखे बिना हम आगे नहीं बढ़ सकते, यह बात आज सर्वमान्य है।

आज एक साथ सौ टका अच्छे सांड मिलना संभव नहीं। इसलिए जो सांड उपलब्ध हों, उनमें से अच्छे सांड कायम रखकर बाकी सांडों को बधिया कर दिया जाय और ज्यों-ज्यों अधिक अच्छे सांड मिलते जावें, उनको रखते जायँ और कम अच्छों को बधिया कर दिया जाय। इस तरीके से आगे बढ़ना होगा। आज-कल धर्म के नाम पर कितनी ही जगह रद्दी सांड इधर-उधर घूमते हैं। उनको बधिया करने में कुछ लोग धर्म की हानि समझकर आपत्ति उठाते हैं; पर उन्हें समझना चाहिए कि अच्छे सांड के छोड़ने में महापुण्य क्यों माना गया है ? इसीलिए कि उससे गो-

संतान की तरक्की होती है। जिस सांड से गोसंतान का पतन होता है, ऐसे रद्दी सांडों को छोड़ना महापाप ही कहायेगा। रद्दी सांडों को बधिया करने का अर्थ है, गोजाति को पतन से बचा लेना। इसलिए रद्दी सांडों को बधिया करने का काम हमारी दृष्टि में अत्यंत आवश्यक और पवित्र काम है। इसके बिना हम आगे बढ़ ही नहीं सकते। इस काम की शिक्षा देने की हमने व्यवस्था की है। नयी पद्धति की बरडिज्जो केस्ट्रेक्टर मशीनें आती हैं। उससे आधे मिनट के भीतर बधिया करने की क्रिया कम-से-कम तकलीफ में हो जाती है।

बुरे सांडों को बधिया करने का काम आसान है, लेकिन अच्छे सांड तैयार करने का काम मुश्किल है। यह बात पहले आ चुकी है कि भारत की सभी गायें सर्वांगी (General Utility) बनायी जा सकती हैं। जो नस्लें सर्वांगी ही हैं, उनका तो सवाल ही नहीं। लेकिन अधिकांश भारत में तो वत्स-प्रधान (Draft Breed) नस्लें ही हैं। उनको सर्वांगी बनाने की दृष्टि से सांड का चुनाव करना हो, तो पहले यह देखना होगा कि अच्छा दूध देनेवाली गाय का बछड़ा सांड के लिए चुना जाय। उसमें सांड के योग्य लक्षण हों तो उसे बचपन से भरपूर दूध पिलाया जाय और अच्छी खुराक दी जाय। सांड के योग्य बछड़ों पर चाहे जितना खर्च करें, बेकार कभी नहीं जाता। अनेक गुना वसूल होता है। अमेरिका ने एक सांड को इंग्लैंड से एक लाख रुपये में खरीदकर अपने गोधन की वृद्धि की है। आज भी वहाँ सांडों की कीमत लोग जानते हैं। पिछले दिनों अखबारों में निकला था कि अमेरिका में एक सांड दस लाख रुपये का है। हिसार सरकारी फार्म पर गधे सांडों का मूल्य १०००) है और एक गधे सांड को तो पाकिस्तान ने पचास हजार में माँगा था।

मैसूर में रेसेस के घोड़े तैयार करने का एक घोड़ा सांड है। उसकी एक सर्विस की फीस एक हजार रुपया ली जाती है। वह घोड़ा लाख रुपये से ऊपर कीमत का माना जाता है। उसी तरह वृषभ भी अच्छे तैयार किये जा सकते हैं। सांड तैयार करने के इस काम में सरकार, गौशालाएँ तथा धनी किसानों को विशेष रूप से भाग लेना चाहिए। सांड का पालन किस तरह हो, इस बारे में संघ की ओर से 'वृषभ-सुधार' नाम की किताब छपी है।

ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना

तैयार किये गये इन सांडों को देहातियों तक पहुँचाना और उनका उपयोग उनकी गायों के लिए हो, इस तरह की व्यवस्था करने का नाम है, ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना (Key Village Centre Scheme)। आज यह योजना इधर-उधर छोटे पैमाने पर शुरू हो रही है। संघ ने भी इस बारे में एक योजना तैयार की है, जो "ग्राम-नस्ल-सुधार-योजना" के नाम से छपी है। इस तरह की योजना यहाँ पर पहले संघ के विशेषज्ञ श्री पारनेरकरजी ने तैयार की। उन्होंने यह योजना सरकार की मार्फत मध्यप्रदेश में सब जगह शुरू की है। आठ सांडों का एक केन्द्र रखा जाता है। ऐसे करीब ८० केन्द्र यहाँ चल रहे हैं। श्री पारनेरकरजी मध्यप्रदेश सरकार के आनरेरी 'लिव स्टाक अफसर' की हैसियत से सारी योजना देखते हैं। इस योजना का प्रसार भारत भर में सरदार दातारसिंहजी कर रहे हैं। उनकी प्रेरणा से हर प्रान्त में इसका प्रयत्न हो रहा है। भावनगर के महाराज ने आठ-दस साल पहले ही इसका प्रयोग श्री पु० न० जोशी के मातहत अपनी रियासत के १०० गाँवों में किया था और उसका नतीजा भी बहुत उत्साहवर्धक रहा। लेकिन रियासतों के विलीनीकरण

की गड़बड़ी में वह सारा काम समाप्त हो गया। सौराष्ट्र सरकार अब फिर से उसे चालू करने का विचार कर रही है।

इस योजना की मुख्य बात यह है कि गाय रखनेवाला हर किसान सांड नहीं पाल सकता। पुराने जमाने की तरह सांड चाहे जिधर फिरता रहे और लोगों की खेती को नुकसान पहुँचाता रहे, यह भी सहने लायक बात नहीं रही। अतः गाँव पीछे जरूरत के अनुसार एक-दो अच्छे सांड रखकर उनके चारे-दाने की व्यवस्था सब मिलकर करें और सरकार भी उसमें सहयोग दे। ऐसी यह सरकारी सांड-पालन की योजना है। यह काम हर गाँव में करना है। सब जगह सरकार का पहुँच सकना सम्भव नहीं। अतः सरकार जितना काम करती है उसे करने दें, लेकिन हम सब भी अपनी शक्ति के अनुसार इस काम को आगे बढ़ायें तभी इतना काम आगे बढ़ सकेगा। पिंजरापोलों को इसे विशेष रूप से करना चाहिए। अच्छे सांडों के वितरण के अलावा कोई ऐसा तरीका नहीं है कि अनुत्पादक पशुओं की संख्या घट सके और गायों का बेमौत मरना रोका जा सके।

पिंजरापोल या गोरक्षण (गौशाला) सुधार

पिंजरापोल या पुरानी गौशालाएँ किस तरह चलें, इसका विचार करने से पहले हम यह देखें कि उनकी स्थापना का उद्देश्य क्या था। पिंजरापोलों की स्थापना लावारिस पशुओं का इंतजाम और चिकित्सा करने के उद्देश्य से हुई थी। अच्छे पशुओं को लोग अपने घरों में पाल लेते हैं। जो भटकते, बेकार, बूढ़े, अपंग पशु होते थे, उनकी पंचायती व्यवस्था का नाम गौशाला या पिंजरापोल था। उसके खर्चे के लिए गाँव के व्यापारी व्यापार पर लाग लगाकर खर्चे की व्यवस्था करते थे। अपंग पशुओं के

इलाज की भी व्यवस्था वहाँ होती थी। आज समय बदल गया है। बेकार भटकनेवाले पशु इतने बढ़ गये हैं कि उन सबको रखना पिंजरापोलों की शक्ति से बाहर की बात हो गयी है। ऐसी स्थिति में पिंजरापोलों को अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए आगे का रास्ता सोचना चाहिए। संघ की राय है कि पिंजरापोलों से बेकार पशु हटाकर उन्हें दूर जंगलों में गोसदनों में रख देना चाहिए। कुछ अपंग पशु वहाँ भले ही रखे जा सकते हैं। वहाँ स्थानीय नस्ल की अच्छी बढ़िया गायें और बढ़िया सांड रखकर 'सिलेक्टिव ब्रीडिंग' की पद्धति से नस्ल सुधारी जाय। सांड के लायक अच्छे बछड़े पैदा करने का प्रयत्न किया जाय। इन बछड़ों को खूब दूध पिलाया जाय। इस तरह बढ़िया सांड तैयार करने का काम पिंजरापोल करने लग जायँ, तो अच्छे सांडों के अभाव में गो-जाति की गिरी दशा रुक जाय तथा बेकार पशुओं की पैदाइश ही कम हो जाय। इस तरह लावारिस पशुओं की समस्या का कुछ हल निकल सकता है। संघ की राय में पिंजरापोलों में निम्न कार्य होने चाहिए:

१. स्थानीय अच्छी गायों की नस्ल सुधारी जाय और घटिया गायों की नस्ल-वृद्धि रोकी जाय।

२. गोवंश को गिरानेवाले हलके सांडों को बधिया किया जाय।

३. अच्छे सांड पैदा किये जायँ और उनका प्रचार किया जाय।

४. हर संस्था के पास यथासंभव चरागाहों की व्यवस्था हो, जहाँ आसपास की जनता की सूखी गायों और बछड़ों को भी रिआयती खर्च लेकर रखा जा सके। इन चरागाहों पर अच्छे सांड भी रखे जायँ।

५. हर संस्था के पास हरा चारा काफी मात्रा में पैदा करने और साइलेज वगैरह के रूप में संग्रह करने की व्यवस्था हो।

६. पिंजरापोलों के मकान सफाई और तन्दुरुस्ती का खयाल रखकर बनाये जायँ और वहाँ कुएँ, पानी की खेती वगैरह की रचना वैज्ञानिक ढंग से और निश्चित नमूने पर हो।

७. हर संस्था में एक पशु-विशारद होना चाहिए, जिसकी देखरेख में संस्था चलायी जाय। इस विशारद को पशुपालन का, उसके लिए होनेवाली खेती का और पशु-चिकित्सा का ज्ञान होना चाहिए।

संक्षेप में हर पिंजरापोल में दो विभाग रहने चाहिए। एक विभाग लूले, लँगड़े, अपंग, बूढ़े, बेकार पशुओं के पालन का, जिसको "सेवा-विभाग" कहा जाय और दूसरे में स्थानीय नस्ल की अच्छी-से-अच्छी गायें रखी जायँ। उनसे बढ़िया सांड पैदा किये जायँ और दूध-उत्पादन किया जाय। इसे "संवर्धन-विभाग" कहा जाय। इस तरीके से गौशाला और पिंजरापोल आगे बढ़ेंगे तो वे अपना उद्देश्य सफल कर सकेंगे। गौशालाओं में अच्छे कार्यकर्ता रखने की तरफ विशेष ध्यान दिया जाय, ताकि काम की उन्नति रुके नहीं। संचालकों को चाहिए कि अच्छे कार्यकर्ताओं की कदर करना सीखें, उन्हें पूरी आजादी दें और काम आगे बढ़ने दें। आजकल कुछ पिंजरापोल या गौरक्षणवाले भैंस रखने लगे हैं। वे सोचते हैं कि भैंस के उत्पादन से गाय का रक्षण करेंगे। इस विचार में मूलभूत दोष यह है कि भैंस के मुकाबले गाय को रक्षण देना छोड़कर हम भैंस को गाय का आधारस्तंभ बनाकर उसे कायम करते हैं। पिंजरापोलों को भैंस रखने के मोह से बचना चाहिए।

चारा-दाना

कार्यकर्ताओं को चाहिए कि गाय को स्वावलंबी बनाने के लिए उसका उत्पादन बढ़ाया जाय यानी गाय की दूध देने की शक्ति बढ़ायी जाय तथा बैल की खेत जोतने की शक्ति बढ़ायी जाय। इसके तीन रास्ते हैं : १. संतुलित खुराक, २. बढ़िया सांड और ३. निजी सँभाल। प्रथम महत्त्व का प्रश्न उचित मात्रा में चारा-दाना मिलने का है। खुराक पूरी नहीं मिलती हो तो उन्नति की आशा ही व्यर्थ है। चारे की कमी के प्रश्न को हल करने के लिए संघ की राय में निम्न उपाय काम में लेने चाहिए :

१. पशुओं की संख्या का कम रखना आवश्यक है, इसलिए खेती और दूध की आवश्यकता एक ही जोड़ी से पूरी की जाय। चाहे बैल-गाय से या पाड़ा-भैंस से।

२. पुराने जमाने की तरह आज बड़ी-बड़ी गोचर-भूमियाँ नहीं रह सकतीं, फिर भी हर गाँव की परिस्थिति के अनुसार फी पशु चौथाई से आधी एकड़ भूमि चरागाह के लिए रहे।

३. चरागाहों में सुधार किया जाय, ताकि घास अधिक पैदा हो और कंट्रोल-चराई का इंतजाम हो।

४. खेती में ऐसे अनाज बोने की तरफ झुकाव रहे, जिनका चारा पशुओं के लिए अधिक पोषक हो।

५. खेती की जमीन बदल-बदलकर जोती जाय याने "रोटेशन पद्धति" दाखिल की जाय ताकि खेती की उपजाऊ-शक्ति बढ़े और पशुओं के लिए खाली जमीन भी रहती जाय।

६. खास चारे की ही खेती की जाय, सिंचाई का प्रबन्ध करके चारे पैदा किये जायँ।

७. सिंचाई से बरसीम, रिजका, मेंगोल्ड, गीनीघास सरीखी

प्रोटीन-प्रधान घास पैदा करने की तरफ ध्यान रखा जाय, ताकि दाना कम-से-कम देना पड़े।

८. जंगलों में फिजूल जानेवाला चारे का अच्छा उपयोग हो और जंगलों में चारा अधिक अच्छी तरह पैदा करने की और उसकी रक्षा की व्यवस्था हो।

९. बेकार पशुओं को जंगलों में गोसदनों में रखा जाय ताकि उनका बोझ उपयोगी पशुओं पर न पड़े तथा जंगलों से देहातों में चारा लाने की भी कोई व्यवस्था हो।

१०. दूध छूटने पर व्याने तक या काम लायक होने तक बछड़े-बछड़ियाँ 'गोकुल' में रखी जायँ।

११. वृक्षों को हानि न पहुँचाते हुए उनकी पत्तियों का चारे के लिए उपयोग बढ़ाया जाय।

१२. आम की गुठली, जामुन की गुठली आदि बेकार जाने-वाली चीजों के पोषक तत्त्वों का पता लगाकर उनका चारे-दाने के लिए उपयोग किया जाय।

१३. खाने के अयोग्य तेलों की खली का सीधा जमीन की खाद के तौर पर उपयोग हो और खाने योग्य तेलों की खली पशुओं के लिए सुरक्षित रहे। पशुओं के गोबर और मूत्र की मार्फत वह खेतों में पहुँचे।

१४. खेती और गोपालन साथ-साथ चलें।

१५. घरों में साग-सब्जी और फलों के छिलके आदि का संग्रह होकर गाय के पेट में पहुँचे।

१६. चूनी, भूसी, चोकर आदि अनाज के छिलकों का पूरा उपयोग गाय की खुराक में हो।

१७. चारा-कड़बी-घास काटकर कुट्टी करके देने की व्यवस्था हो, ताकि चारे की बचत हो।

१८. चारे के यातायात का रेलवे-किराया खास तौर से कम रखा जाय।

इस तरह खानेवालों की संख्या कम रखके, चारे की उपज बढ़ाकर, जंगलों के चारे की रक्षा करके, नये-नये चारों की खेती करके, बेकार जानेवाली चीजों से चारे का काम लेकर व कुट्टी द्वारा चारे की बचत करके तथा इसी तरह के अन्य तरीकों से इस सवाल को हल करना चाहिए। जैसे राष्ट्र के अनाज के लिए प्लॉनिंग होती है उसी तरह चारे के लिए भी प्लॉनिंग होनी चाहिए।

वैयक्तिक या सामुदायिक

गोपालन में संतुलित खुराक और अच्छे सांड के बाद सँभाल का प्रश्न आता है। गाय की देखभाल, सार-सँभाल आज के जमाने में सामुदायिक गोपालन से ही सफल हो सकेगी, ऐसी पूज्य बापूजी की स्पष्ट राय रही है। एक विचारधारा यह भी है कि अधिक गायें एक साथ रखने से उन पर वैयक्तिक देखभाल नहीं रह सकती। गाय सदा प्रेम की पहचान रखती है। प्रेम से उस पर हाथ फिराकर दूध बढ़ाया जा सकता है। इसलिए दूध का उत्पादन वैयक्तिक हो यानी हर किसान के पास एक-एक, दो-दो गायें और बाजार का काम सामुदायिक हो। यानी दूध-घी बेचना, दाना खरीदना आदि सामुदायिक हों। दोनों में ही गुण-दोष हैं। संभव है स्थानीय परिस्थिति के अनुसार पद्धति तय करनी पड़े। इस बारे में पू० बापूजी के विचार उन्हींके शब्दों में रख देना ठीक रहेगा :

"गोसेवा-संघ की सभा के सामने एक महत्त्व का प्रश्न था कि गोपालन वैयक्तिक हो या सामुदायिक? मैंने राय दी कि सामुदायिक हुए बगैर गाय बच ही नहीं सकती और इसलिए भैंस भी नहीं बच सकती। हाँ, एक

किसान अपने घर में गाय-बैल रखकर उनका पालन भलीभाँति और शास्त्रीय पद्धति से नहीं कर सकता। गोवंश के ह्रास के अनेक कारणों में वैयक्तिक गोपालन भी एक कारण हुआ है। यह बोझ वैयक्तिक किसान की शक्ति के बिल्कुल बाहर है।

"मैं तो यहाँ तक कहता हूँ, आज संसार हरएक काम में सामुदायिक रूप से शक्ति का संगठन करने की ओर जा रहा है। इस संगठन का नाम सहयोग है। बहुत-सी बातें आजकल सहयोग से हो रही हैं। हमारे मुल्क में भी सहयोग आया तो है; लेकिन वह ऐसे विकृत रूप में आया है कि उसका सही लाभ हिन्दुस्तान के गरीबों को बिल्कुल नहीं मिला।

"हमारी आबादी बढ़ती जा रही है और उसके साथ व्यक्तिगत रूप से किसान की जमीन कम होती जा रही है। नतीजा यह हुआ है कि प्रत्येक किसान के पास जितनी चाहिए उतनी जमीन नहीं है। जो है वह उसकी अड़चनों को बढ़ानेवाली है।

"ऐसा किसान अपने घर में या खेत पर निज की गाय या बैल नहीं रख सकता। रखता है तो अपने हाथों अपनी बरबादी को न्योता भी देता है। आज हिन्दुस्तान की यह हालत है। धर्म, दया या नीति की परवाह न करनेवाला अर्थशास्त्र तो पुकार-पुकारकर कहता है कि आज हिन्दुस्तान में लाखों पशु मनुष्य को खा रहे हैं। क्योंकि उनसे कुछ लाभ नहीं पहुँचने पर भी उन्हें खिलाना पड़ता ही है। इसलिए मार डालना चाहिए। लेकिन धर्म कहो, नीति कहो या दया कहो, ये हमें इन निकम्मे पशुओं को मारने से रोकते हैं।

"इस हालत में क्या किया जाय? यही कि जितना प्रयत्न पशुओं के जिन्दा रखने और उन्हें बोझ न बनने देने का हो सकता है किया जाय। इस प्रयत्न में सहयोग का अपना बड़ा महत्त्व है। सहयोग से यानी सामुदायिक पद्धति से पशुपालन करने से—

१—जगह बचेगी, किसान को अपने घर में पशु नहीं रखने पड़ेंगे।

आज तो जिस घर में किसान रहता है, उसीमें उसके सारे मवेशी भी रहते हैं। इससे हवा बिगड़ती है और घर में गंदगी रहती है। मनुष्य पशु के साथ एक ही घर में रहने के लिए पैदा नहीं हुआ। ऐसा करने में न दया है, न ज्ञान।

२—पशुओं की वृद्धि होने पर एक घर में रहना असंभव हो जाता है। इसलिए किसान बछड़े को बेच डालता है और भैंस या पाड़े को मार डालता या मरने के लिए छोड़ देता है। यह अधमतर है।

३—जब पशु बीमार होता है, तब व्यक्तिगत रूप से किसान उसका शास्त्रीय इलाज नहीं करवा सकता। अपनी समझ से ही चिकित्सा कर लेता है।

४—प्रत्येक किसान सांड नहीं रख सकता, लेकिन सहयोग के आधार पर बहुत से पशुओं के लिए एक अच्छा सांड रखना सरल है।

५—व्यक्तिशः किसान गोचर-भूमि तो क्या पशुओं के लिए व्यायाम की यानी हिरने-फिरने की भूमि भी नहीं छोड़ सकता। किन्तु सहयोग के आधार से ये दोनों सुविधाएँ आसानी से मिल सकती हैं।

६—व्यक्तिशः किसान को घास इत्यादि पर बहुत खर्च करना पड़ता है। सहयोग द्वारा कम खर्च में काम चल जायगा।

७—व्यक्तिशः किसान अपना दूध आसानी से नहीं बेच सकता। सहयोग द्वारा उसे दाम भी अच्छे मिलेंगे और वह दूध में पानी वगैरह मिलाने से भी बच सकेगा।

८—व्यक्तिशः किसान के पशुओं की परीक्षा असंभव है, किन्तु गाँव भर के पशुओं की परीक्षा सुलभ है और उनके नस्ल-सुधार का प्रश्न भी आसान है।

"सामुदायिक या सहकारी पद्धति के पक्ष में इतने कारण होने चाहिए। सबसे बड़ी और प्रत्यक्ष दलील यह है कि व्यक्तिगत पद्धति के

कारण हमारी और पशुओं की दशा आज इतनी दयनीय हो उठी है। उसे बदलकर हम बच सकते हैं, और पशुओं को बचा सकते हैं।

"मेरा तो दृढ़ विश्वास है कि जब हम अपनी जमीन भी सामुदायिक पद्धति पर जोतेंगे, तभी उससे फ़ायदा उठा सकेंगे। बनिस्बत इसके कि गाँव की खेती अलग-अलग सौ टुकड़ों में बँट जाय, क्या यह बेहतर नहीं कि सौ कुटुम्ब सारे गाँव की खेती सहयोग से करें और उसकी आमदनी आपस में बाँट लिया करें और जो खेती के लिए है, वह पशु के लिए भी समझा जाय?

"यह दूसरी बात है कि आज लोगों को सहयोग पद्धति पर लाने में कठिनाई है। कठिनाई तो सभी सच्चे और अच्छे कामों में होती हैं। गोसेवा के सभी अंग कठिन हैं। कठिनाइयाँ दूर करने से ही सेवा का मार्ग सुगम बन जाता है। यहाँ तो बताना यह था कि सामुदायिक पद्धति क्या चीज है और वह वैयक्तिकता से इतनी अच्छी क्यों है? यही नहीं, बल्कि वैयक्तिक गलत है, सामुदायिक सही है। व्यक्ति अपने स्वातंत्र्य की रक्षा भी सहयोग को स्वीकार करके ही कर सकता है। अतएव यहाँ सामुदायिक पद्धति अहिंसात्मक है, वैयक्तिक हिंसात्मक।" (८-२-'४२)

पशु-चिकित्सा

संसार भर में स्वास्थ्य-रक्षा का स्थान बड़ा महत्त्वपूर्ण है। स्वास्थ्य-रक्षा के दो विभाग हैं। एक रोग-प्रतिबंधक और दूसरा चिकित्सा। हमारी दृष्टि में सबसे अधिक शक्ति प्रतिबंधक उपायों में लगानी चाहिए। गायों के शरीर में अधिकांश रोग गंदे पानी के द्वारा प्रवेश करते हैं। इसलिए उन्हें साफ पानी मिले इस ओर खास ध्यान दिया जाय। रहने का स्थान भी स्वच्छ, गंदगी-रहित हो। संक्रामक बीमारियों में टीका लगाने आदि की सावधानी रखी जाय।

आज की दुनिया में चिकित्सा-शास्त्र काफी बढ़ा हुआ है। अनेक पद्धतियाँ चल रही हैं। इस जमाने में एलोपैथी ने बहुत उन्नति की है और बड़े-से-बड़े शास्त्रज्ञ और आज की सभी सरकारें इसके पीछे पूरी शक्ति लगा रही हैं। जिन देशों में इस पद्धति का विकास हुआ है, उन देशों का उत्पादन भारत के मुकाबले काफी अधिक है। इस पद्धति का उन देशों ने बहुत लाभ उठाया है। फिर भी हमारे देश में इसकी अधिक प्रगति नहीं हो सकी है। कुछ शहरों तक ही वह सीमित है। इसका मुख्य कारण पद्धति का खर्चीलापन है। हमारे किसान की आर्थिक स्थिति इतनी कमजोर है कि वह अपने खुद के लिए भी इस चिकित्सा का लाभ नहीं ले सकता। तब फिर पशुओं का सवाल ही नहीं उठता। हमारे किसान के पशुओं को उसी पद्धति से लाभ पहुँच सकता है जिसका ज्ञान और खर्च उसके बूते के बाहर न हो। हमारी देशी-चिकित्सा-पद्धति दोनों बातों में किसानों के अनुकूल है। इसका ज्ञान भी किसान को आसानी से हो सकता है और इसमें खर्च भी बहुत कम लगता है। सिवा बहुत-सी चीजें आसपास ही मिल जाती हैं। किसी दूसरे देश पर अवलंबित भी नहीं रहना पड़ता। इन सब दृष्टियों से किसान के हित में देशी-चिकित्सा-पद्धति ही लाभदायी होगी, ऐसा हमारा ख़याल है।

एलोपैथी की जो दवाइयाँ किसान के बूते में होंगी, यानी जो बहुत महँगी नहीं होंगी उनका उपयोग करेंगे तथा सीरम, वेक्सीन आदि दवाइयों का उपयोग भी करना होगा जो रोगों के प्रतिकार के लिए सुरक्षितता के तौर पर उपयोग में आती हैं और जिनका स्थान ले सकनेवाली देशी दवाइयाँ अभी उपलब्ध नहीं हैं। हमें किसी भी पद्धति से विरोध या नफरत नहीं है। होमियोपैथी

दवाइयाँ भी हमारे यहाँ काम में ली जाती हैं। सब पद्धतियों में कुछ-कुछ विशेष गुण हैं जिनके कारण वे बढ़ी हैं। उन सब अच्छी बातों का लाभ उठाना चाहिए, लेकिन संघ अपनी ओर से उन्हीं दवाइयों को प्रोत्साहन देने का प्रयत्न करेगा जो दवाइयाँ किसान की शक्ति से बाहर महँगी नहीं हैं और जो किसान को स्वावलम्बन की ओर ले जानेवाली हैं। हमारी राय में देशी-चिकित्सा-पद्धति ही सर्वोपरि किसान के अनुकूल रहेगी। वही उसे स्वावलम्बी बना सकेगी। हमारा भरोसा है कि उस पद्धति में काफी शक्ति छिपी है, उस पर प्रयोग करने की जरूरत है। संघ की ओर से पीपरी में देशी चिकित्सा से सब तरह के रोगी पशुओं के इलाज सफलतापूर्वक किये जाते हैं। इस विषय पर पशुओं की "प्रसिद्ध वनौषधि-चिकित्सा" नाम की अनुभूत नुस्खों की एक किताब निकाली गयी है। पीपरी में देशी पशु-चिकित्सा की शिक्षा भी मुफ्त देने का इंतजाम है।

कृत्रिम गर्भाधान

आज भारत में इस विधि का सरकार की ओर से सब प्रान्तों में प्रचार चालू है। अनेक जगह इसके केन्द्र खुले हैं। इस पद्धति से १० सांडों का काम एक ही सांड से लिया जा सकता है, यह इसका मुख्य गुण है। आज सांडों की बेहद कमी होने के कारण इस तरीके की अत्यधिक आवश्यकता है, ऐसा एक पक्ष है। इस विधि पर अनेक व्यावहारिक आक्षेप भी हैं, जैसे, साधारण-से जानकारों से यह कार्य कराया जाता है जिससे बड़ा नुकसान हो रहा है। गाँववाले दूर से गाय लाते हैं तो वह आने तक बुझ जाती है। सांड का चुनाव ठीक से नहीं होता, इस कारण हजारों गायों को नुकसान होता है। गाय के गरमाने का ठीक पता सांड

को ही लग सकता है। हमें बराबर पता न लगने से वह यों ही रह जाती है। सांड के साथ रहने से ही गायें समय पर गरमाती हैं। उसके बिना नहीं, ऐसे अनेक आक्षेप हैं लेकिन इन सबको ठीक किया जा सकता है। इस पद्धति पर मुख्य आक्षेप नैतिक है। इस बारे में पू० विनोबाजी की राय इस प्रकार है:

"गायों के कृत्रिम गर्भाधान के बारे में मैंने पहले ही सोच लिया है। यह सारी क्रिया मानव-समाज के लिए नैतिक अधोगति का साधन हो सकती है। विज्ञान का विकास तो मैं बहुत चाहता हूँ, लेकिन नीति की मर्यादाओं का खयाल रखकर ही विज्ञान का उपयोग किया जाना चाहिए। इसलिए मेरी साफ राय है कि उस अश्लील क्रिया का प्रचार बन्द होना चाहिए, और अच्छे सांड तैयार करने के पुरुषार्थ में लग जाना चाहिए। वह काम कितना भी महँगा क्यों न मालूम हो, आखिर में वह सस्ता ही साबित होगा।"

संघ ने तय किया है कि वह अपनी ओर से कृत्रिम गर्भाधान का कोई केन्द्र नहीं चलावेगा और न इस क्रिया के प्रचार में किसी तरह का सहयोग देगा।

यंत्रों की मर्यादा

खेती में ट्रैक्टर वाहन के लिए मोटर-ट्रक तथा पानी के लिए एंजिन पम्पों का उपयोग कहाँ तक किया जाय, यंत्रों की मर्यादा क्या हो, इस बारे में पूज्य विनोबाजी की राय इस प्रकार है:

"यन्त्र तीन प्रकार के होते हैं। समय-साधक, संहारक और उत्पादक।

१. समय-साधक यन्त्रों का मैं विरोध नहीं करता। ट्रेन, हवाई जहाज जैसे यन्त्रों से उत्पादन नहीं बढ़ता, बल्कि समय बचता

है। दस हजार घोड़ों से हवाई जहाज की बराबरी नहीं हो सकती है। इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम चाहते हैं।

२. तोप, बन्दूक, बम जैसे संहारक यन्त्रों का अहिंसा में स्थान नहीं है। इसलिए ऐसे यन्त्रों को हम नहीं चाहते।

३. उत्पादक यन्त्र दो प्रकार के होते हैं—पूरक और मारक। जहाँ जनसंख्या अधिक है और वहाँ कोई यन्त्र लोगों को बेकार बनाता है वह मारक है। पर जहाँ मनुष्य-शक्ति कम है और काम ज्यादा हैं वहाँ पर वही यन्त्र मारक नहीं पूरक साबित होगा। हिन्दुस्तान में बड़े-बड़े ट्रैक्टर जैसे यन्त्र लाने से लाजमी तौर पर बेकारी बढ़नेवाली है। परंतु अमेरिका, आस्ट्रेलिया जैसे देश में वे ही यंत्र मारक नहीं, पूरक साबित होंगे। उसी तरह आज एक काल में एक यन्त्र पूरक हो तो दूसरे काल में वह यन्त्र मारक बन जाता है। इस तरह देश, काल और परिस्थिति के अनुसार कोई भी यन्त्र पूरक या मारक साबित होते हैं। इसलिए यन्त्र शब्द से न हम स्नेह रखना चाहते हैं और न विरोध करना चाहते हैं। किसी भी यन्त्र की उपयोगिता देखकर हम उसका उपयोग करेंगे।"

इस दृष्टि को सामने रखते हुए व्यवहारतः ऐसा सोचा गया है कि नयी जमीनों को तोड़ने की हद तक ट्रैक्टर से काम लिया जा सकता है। लेकिन रोज की चालू खेती में उसका उपयोग न किया जाय। मोटर-ट्रक और बैलगाड़ी में भी ऐसी कुछ मर्यादा बाँधी जाय कि फलाँ दूरी के ऊपर ही मोटर-ट्रक चलें। सिंचाई के लिए एंजिन-पंपों का जरूरत के अनुसार उपयोग करने में आज की हालत में हर्ज न माना जाय। हालाँकि गहराई की कुछ मर्यादा यहाँ भी बाँधनी होगी।

गोपालन के सम्बन्ध में हमारी पूरी विचारधारा संक्षेप में ऊपर आ चुकी है। गोपालन से हम क्या प्राप्त करना चाहते हैं

यह बात प्रारंभ में ही दे दी गयी है। गोशास्त्रियों में व संघ की विचारधारा में मुख्य फर्क यह है कि वे दूध को प्रधानता देते हैं। संघ बल को प्रधानता देता है। उनके सामने शहरों की माँग प्रथम है, संघ के सामने देहातों की माँग। इस विचार-भेद को हमें स्पष्टरूप से समझ लेना चाहिए।

गोसेवक इन सब पर विचार करें। यदि वे और कुछ जानकारी देना चाहें या कुछ फेर-बदल सुझावें तो उस पर विचार किया जायगा।

परिशिष्ट : १

गो-सेवा-संघ

: क : स्थापना एवं विकास

गोरक्षा-मंडल

२८ दिसम्बर, १९२४ को बेलगाँव में पूज्य बापूजी की अध्यक्षता में एक गोरक्षा-परिषद् श्री चौंडे महाराज की प्रेरणा से हुई थी। यहीं से इस संगठन का प्रारंभ हुआ। इस परिषद् के निश्चयानुसार २२ मार्च, १९२५ को विधान बनाया गया और २८ अप्रैल, १९२५ को माधवबाग, बंबई में अखिल भारत गोरक्षा-मंडल का यह विधान[1] स्वीकार किया गया। इस विधान को पेश करते समय पू० बापूजी के कहे गये पहले ही वाक्य[2] से पता चलता है कि यह काम उन्हें कितना भारी मालूम देता था। उन्होंने कहा, "अपनी जिन्दगी में मैंने बहुत से काम हाथ में लिये हैं, लेकिन जहाँ तक मुझे याद है, ऐसा एक भी काम नहीं जिसके बारे में इतना भय और कंपन मुझे हुआ हो, जितना आज इस काम को उठाते हुए हो रहा है।" इसी समय पू० बापूजी ने अपने बहुत से साथियों को केवल गाय का ही दूध-घी काम में लेने का व्रत दिलाया। उन व्रतधारियों में से पू० काका साहब कालेलकर, आचार्य विनोबाजी, श्रीमती जानकीदेवीजी बजाज आदि के व्रत आज भी बराबर चालू हैं।

गोसेवा संघ, साबरमती

कुछ वर्षों के बाद ऐसा दिखायी दिया कि मंडल का जितना,

१. २. देखिये 'गो-सेवा', सम्पादक—बालजी गोविंदजी देसाई पृ० १६६ तथा २२।

प्रभाव जनता पर पड़ना चाहिए था, नहीं पड़ रहा है। इसलिए २५ जुलाई, १९२८ को इस मंडल का विसर्जन कर दिया गया और उसके स्थान पर 'गोसेवा-संघ'[1] नाम की संस्था साबरमती में स्थापित की गयी। पू० बापूजी उसके अध्यक्ष रहे। १८ सदस्यों की समिति बनायी गयी।

गोसेवा संघ, वर्धा

सन् १९४० के व्यक्तिगत सत्याग्रह में स्वर्गीय श्री जमनालालजी बजाज स्वास्थ्य बिगड़ने के कारण जेल से रिहा कर दिये गये थे। पू० बापूजी वैसी हालत में उन्हें दुबारा जेल में नहीं जाने देना चाहते थे। तब श्री जमनालालजी की इच्छा हुई कि बापूजी के किसी अधिक-से-अधिक प्रिय विधायक कार्य में शक्ति लगायी जाय। पू० बापूजी ने बताया कि उन्हें हरिजन-सेवा और गोसेवा—ये दो काम अत्यन्त प्रिय हैं। लेकिन उनमें भी वे गोसेवा को पहला स्थान देते हैं; क्योंकि इस काम के योग्य व्यक्ति अभी तक उन्हें नहीं मिल सका है। पू० बापूजी की विशेष इच्छा देखकर तथा वैश्य का स्वाभाविक धर्म भी कृषि-गोसेवा होने के नाते उन्होंने इस कार्य का भार उठाना स्वीकार कर लिया।

विजया-दशमी, संवत् १९९८ यानी ३० सितम्बर, १९४१ के दिन पू० बापूजी ने ग्राम-सेवा-मंडल की नालवाड़ी-गौशाला में गोसेवा-संघ,[2] वर्धा, की नींव डाली। इसी समय ग्राम-सेवा-मंडल की नयी बस्ती का नाम गोपुरी रखा गया और साबरमती के गोसेवा-संघ को इसमें विलीन कर दिया गया।

प्रथम सम्मेलन

गोसेवा-संघ की स्थापना के समय ही श्री जमनालालजी अपने शहर के बंगले को छोड़कर गोपुरी में घास की कुटिया बनाकर

---

१. विधान के लिए देखिये 'गोसेवा' पृ० १९८।

२. गोसेवा-संघ, वर्धा के विधान के लिए देखिये 'गोसेवा' पृ० १९०।

रहने लगे थे। उनके स्वभाव के अनुसार उनका सारा समय इसी काम की धुन में बीतने लगा। कुछ ही दिनों में उन्होंने गोसेवा-संघ के ११५ व्रतधारी सदस्य बना लिये। देश के छोटे-बड़े सब लोगों को इस कार्य की ओर आकर्षित कर लिया। चार महीने बाद १ फरवरी, १९४२ को वर्धा में गोसेवा-संघ का प्रथम सम्मेलन हुआ। पं० मदनमोहनजी मालवीय उसके अध्यक्ष मनोनीत थे। पर अस्वस्थ होने के कारण वे उपस्थित न हो सके। अतः सम्मेलन आचार्य विनोबाजी की अध्यक्षता[1] में हुआ। सम्मेलन[2] का उद्घाटन पू० बापूजी ने किया। सम्मेलन का उत्साह देखकर यह महसूस हो रहा था कि गोसेवा का कार्य अब बहुत तेजी से आगे बढ़ेगा। मंडल ने अगले वर्ष के कार्यक्रम में नीचे लिखे कार्यों पर जोर देने का निश्चय किया :

१. संघ के एक हजार साधारण सदस्य बनाये जायँ।

२. बिना मिलावट का शुद्ध घी और दूध बढ़ाने का प्रचार।

३. गोशालाओं और पिंजरापोलों में सुधार करवाने और उन्हें संघ से सम्बद्ध होने की प्रेरणा दी जाय।

४. संशोधन के लिए एक प्रयोगालय चलाया जाय।

५. गोसेवक तैयार करने के लिए गोप-विद्यालय चलाया जाय।

६. वर्धा कस्बे भर को गाय का शुद्ध दूध देने की कोशिश की जाय।

७. वर्धा के आसपास के गाँवों में नस्ल-सुधार और घी-उत्पत्ति के केन्द्र खोले जायँ।

जमनालालजी का स्वर्गवास

लेकिन इस सम्मेलन के एक सप्ताह बाद ही, ११ फरवरी, १९४२ को

---

१. पू० विनोबाजी के अध्यक्षीय भाषण के लिए देखिये—'गोसेवा' पृ० १३८।

२. सम्मेलन की पूरी कार्यवाही प्रथम सम्मेलन के नाम से जो अलग छपी है, कार्यालय से मँगायी जा सकती है।

श्री जमनालालजी का स्वर्गवास हो गया और यह काम फिर से निराधार बन गया। उनके स्वर्गवास के ८ दिन बाद १९ तारीख को नवभारत विद्यालय, वर्धा के हाल में पू० बापूजी के निमन्त्रण से उनके सारे मित्र बहुत बड़ी संख्या में उपस्थित हुए। उस सभा में हरएक का दिल श्री जमनालालजी के वियोग के दुख से छटपटा रहा था। पू० बापूजी का कंठ अवरुद्ध हो गया था। हर आदमी के दिल में श्री जमनालालजी के गोसेवा के अधूरे कार्य को पूरी ताकत से आगे बढ़ाने की भावना थी। इस काम के लिए भारी चन्दा इकट्ठा करने की तथा अनेक तरह की योजनाएँ सोची गयीं। सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला तथा दो-चार मित्रों ने मिलकर पाँच लाख की लागत के १००० साँड श्री जमनालालजी के स्मरण में वितरण करने का निश्चय किया। उसके लिए 'वृषभ-सुधार-मण्डल' के नाम से एक स्वतन्त्र संगठन बनाया गया और साँड तैयार करने का केन्द्र पिलानी (जयपुर) में खोला गया। पू० जानकीदेवीजी को श्री जमनालालजी के स्थान पर गो-सेवा-संघ की अध्यक्षा बनाया गया। उनकी मदद के लिए आचार्य विनोबाजी और सेठ घनश्यामदासजी बिड़ला—ये दो उपाध्यक्ष बनाये गये। जानकीदेवीजी ने अपनी सारी निजी संपत्ति, जो करीब सवा दो लाख की थी, संघ को समर्पित कर दी। संघ के मंत्री का काम अस्थायी रूप से राधाकृष्ण बजाज के जिम्मे किया गया। काम को गति देने की दृष्टि से श्री जमनालालजी ने स्वामी आनंद को यह भार सौंपना चाहा था, पर तब वे मिल नहीं सके थे। इस बार पू० बापूजी ने उन्हें वर्धा बुला लिया और मंत्री का काम उनके जिम्मे किया गया।

सत्याग्रह आन्दोलन

इस सारी व्यवस्था में कुछ महीने बीत गये। इतने में ही सन् १९४२ का अगस्त-आन्दोलन छिड़ गया। स्वामी आनन्द महसूस करने लगे कि हमारा बरसों का नस्ल-सुधार का काम यह विदेशी सरकार गायों को कत्ल

करके मिनटों में बरबाद कर देती है, इसलिए सर्वप्रथम इसको हटाना ही गोसेवा है। इस विचार से वे आन्दोलन में भाग लेने के लिए बंबई वापस चले गये। आन्दोलन तीन साल तक जारी रहा। अधिकांश लोग जेलों में रहे। वर्धा शहर में दूध-वितरण के लिए जो गोरस-भंडार का काम शुरू किया गया था, वह काम दफ्तर के लोगों द्वारा प्रयत्नपूर्वक चालू रखा गया। इस बीच सेवाग्राम की गोशाला भी संघ के अधीन आ गयी थी। उसका काम श्री पारनेरकरजी ने सँभाला। संघ का दफ्तर सेवाग्राम में ही रहा।

पुनस्संगठन

जेलों से छूटकर आने के बाद हम सब फिर इसमें लगे और ११ अगस्त, '४५ से श्री ऋषभदासजी रांका के मंत्रित्व में संघ का काम फिर से बढ़ाना शुरू किया गया। ११ फरवरी, १९४६ को देशरत्न बाबू राजेन्द्र-प्रसादजी की अध्यक्षता में स्वर्गीय जमनालालजी की समाधि के पास गोपुरी में संघ का दूसरा[1] सम्मेलन हुआ। इसका उद्घाटन भी बापूजी ने ही किया। इस सम्मेलन से संघ में पुनर्जीवन आया और काम कुछ आगे बढ़ने लगा। सेवाग्राम की गौशाला व जमीन नयी तालीम के काम के लिए पू० बापूजी की इच्छानुसार तालीमी संघ को दे दी गयी और वर्धा से तीन मील आर्वी रोड पर पीपरी में बच्छराज खेतीज लि० से गौशाला व जमीन खरीद ली गयी। तब से अब तक संघ की गौशाला व खेती पीपरी में ही चल रहे हैं। श्री पारनेरकरजी गौशाला के साथ ही सेवाग्राम से पीपरी आ गये। लेकिन कुछ दिन बाद ही मध्यप्रदेश सरकार के पशु-सुधार विभाग के मुखिया का काम अवैतनिक रूप से करने लगे। वे अभी तक वहाँ की व्हिलेज-सेंटर के नाम से ग्राम नस्ल-सुधार का काम

१. दूसरे सम्मेलन की पूरी कार्यवाही कार्यालय से प्राप्त हो सकती है।

सुचारु रूप से कर रहे थे। १ जनवरी, १९५३ से वे संघ के काम पर वापस आ गये।

कुछ दिन बाद संचालक-मंडल ने महसूस किया कि श्री ऋषभदासजी अपने निजी कामों के कारण पर्याप्त समय नहीं दे पाते हैं, इसलिए पू० विनोबाजी से कहकर राधाकृष्ण बजाज को संघ के स्थायी मंत्री के काम के लिए माँग लिया गया। मध्यप्रदेश सरकार की प्रार्थना पर १९४६ से १९५१ तक स्टॉकमैन और स्टॉक-सुपरवाइजर की शिक्षा देने के लिए संघ की ओर से गोप विद्यालय चलाया गया। १९५१ से संघ का विद्यालय पीपरी में चलता रहा और जनवरी, १९५४ से वह सेवाग्राम आ गया।

सन् १९४७ में चर्खा-संघ, राजस्थान के भूतपूर्व मंत्री श्री बलवन्तरावजी देशपांडे, गोसेवा में आ गये। पीपरी के सारे कार्यों को अब वे ही सँभालते हैं। गोरस-भंडार का काम बढ़ाया गया। रोजाना करीब २०-२५ मन गाय का दूध शहर में दिया जाता है। राधाकृष्ण बजाज को गोसेवा-संघ के काम के लिए दे देने के बाद ग्रामसेवा-मंडल ने गोसेवा-चर्मालय भी संघ को दे दिया। इस चर्मालय के संस्थापक श्री गोपालराव वालुंजकर हैं। चर्मालय की सारी उन्नति उन्हींकी मेहनत का फल है। लेकिन उन्हें इन दिनों दूसरे कामों में अधिक समय देना पड़ता था। अतः वे पूर्ववत् चर्मालय की पूरी देखभाल नहीं रख सकते थे। चर्मालय की देखभाल उनके बड़े भाई श्री बाबाजी वालुंजकर के जिम्मे की गयी। इस तरह अनेक काम बढ़ते गये।

विलीनीकरण

पू० बापूजी के निर्वाण के बाद ता० १३ मार्च, १९४८ को सेवाग्राम में रचनात्मक कार्यकर्ताओं का एक सम्मेलन हुआ। उसमें तय हुआ कि पू० बापूजी के इच्छानुसार सारे अखिल भारतीय व रचनात्मक संघ एक संगठन में आ जावें। इस निश्चय के अनुसार 'अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ'

की स्थापना हुई। संघ का विधान[1] मार्च, १९४९ को राऊ में स्वीकृत हुआ और ५-१-'५१ को संघ रजिस्टर्ड हुआ। सर्वोदय-सम्मेलन, अनगुल में यह विचार हुआ था कि जितने संघ सर्व-सेवा-संघ में विलीन हो सकें, अच्छा है। इसके अनुसार गोसेवा-संघ के संचालक-मंडल ने ८-७-'५० को सर्व-सेवा-संघ में विलीन होने का निम्न प्रस्ताव स्वीकार किया :

संचालक-मंडल का प्रस्ताव

"जुड़े संघों के विलीनीकरण के सम्बन्ध में सर्व-सेवा-संघ का प्रस्ताव उपस्थित किया गया और चर्चा की गयी। अहिंसक समाज की रचना के लिए सारे विधायक कार्य एक-दूसरे के अविभाज्य अंग हैं। उन सबके संगठन एवं प्रचार का विचार समग्रता की दृष्टि से होने के लिए एक ही संघ का होना अच्छा है। सर्व-सेवा-संघ की स्थापना इसी दृष्टि से हुई है और इसी दृष्टि से सर्व-सेवा-संघ ने उक्त प्रस्ताव भेजा है। इस पर काफी विचार-विनिमय होकर तय हुआ कि संचालक-मंडल की राय में उक्त प्रस्ताव पर्याप्त नहीं है। अब समय आ गया है कि जितने भी रचनात्मक संघ हैं, अपने अलग संघों को विसर्जन करके, जितना जल्दी सर्व-सेवा-संघ में मिल जायँ, उतना ही बेहतर होगा। इसलिए यह संचालक-मंडल, यदि गोसेवा-संघ की सर्वसाधारण सभा की अनुमति प्राप्त हो जाय तो, सर्व-सेवा-संघ में विलीन होने के पक्ष में है।"

ता० ४-८-'५० का गो-सेवा-संघ की साधारण सभा का प्रस्ताव

"सारी जानकारी दिये जाने के बाद इस विषय में गोसेवा-संघ की इसी साधारण सभा में चर्चा होकर तय हुआ कि

---

१. सर्व-सेवा-संघ का विधान अलग छपा है जो सर्व-सेवा संघ, सेवाग्राम, वर्धा से मिलेगा।

संचालक-मंडल के ८-७-'५० के प्रस्ताव नं० २ के अनुसार गोसेवा-संघ को सर्व-सेवा-संघ में विलीन कर दिया जाय और सर्व-सेवा-संघ जो कहे उसके अनुसार कानूनी कार्यवाही की जाय। जब तक सर्व-सेवा-संघ गो-सेवा-संघ को सँभाल न सके तब तक गोसेवा-संघ का कार्य पूर्ववत् चालू रखा जाय।"

प्रस्ताव के बाद पू० विनोबाजी ने जो मार्मिक शब्द कहे, उनका सार इस प्रकार है :

"अभी जो प्रस्ताव किया गया है, वह पूर्ण रूप से उचित मालूम पड़ता है। यद्यपि हम सब लोग अपने सब कामों को मानते हैं, तथापि अभी तक हम अपने-अपने कामों में मशगूल रहे और दूसरे कामों के बारे में जानकारी कम रखते थे। सहकार भी कम होता था, लेकिन वह जो अभाव था उसकी पूर्ति गांधीजी अकेले कर लेते थे। तब निभ जाता था। लेकिन उनके बाद अब आपस में प्रत्यक्ष सहकार की अधिक आवश्यकता है। पहले कोई असहकार था ऐसा नहीं है, लेकिन परस्पर अनुबन्ध कम था। जब एक मनुष्य ऐसा था कि सब तरह से सबको जोड़ देता था तो हरएक अपने-अपने काम में एकाग्रता से रह सकता था। यह कोई बुरी बात नहीं थी। उसका जो भी परिणाम होना था वह हुआ, लेकिन हर चीज की एक मर्यादा होती है, उसके बाहर एकाग्रता जाय तो हानिकारक हो सकती है।

"जब यह 'समग्रता' शब्द निकला, तभी मैंने कहा था कि इसका मतलब यह नहीं है कि सब चीजों को करें और सब बिगाड़ें। "एकहिं साधे सब सधे, सब साधे सब जाय।" गो-सेवा-संघ का कार्य व्यापक तो होता जा रहा है, पर इसका मतलब यह नहीं है कि गोसेवा का कार्य परिपुष्ट और मजबूत भी होगा। व्रत लेना कठिन बात होती है। फिर भी वर्धा में केवल १५ व्रत-

धारों का होना स्पष्ट बताता है कि हमारा काम अलग-अलग होने से कमजोर हो गया है। जब कभी यन्त्रवाद के विरुद्ध अहिंसा को लेकर हम खड़े होते हैं, सब इकट्ठे नहीं हैं और हर विभाग अलग-अलग विरोध करता है, तो हमको पूर्ण सफलता नहीं मिलती और यही मान लेना पड़ता है कि यन्त्रों का मुकाबला ग्रामोद्योग क्या कर सकते हैं ? इसलिए हमको समझना चाहिए कि जिस प्रकार यंत्रों के पीछे लश्कर, पुलिस आदि आधार-रूप रहते हैं, वैसे ही हमको सभी ग्रामोद्योगों को जोड़कर मजबूत होना पड़ेगा। तभी हम सच्चे माने में सफलता प्राप्त कर सकते हैं।

"ईसा के बाद उनके बारह शिष्य ही थे। उन्होंने काफी सहन किया, त्याग किया और उसीके लिए खुद को भी अर्पण किया। वैसे बन्धु-भाव के बगैर काम नहीं चलेगा। गुण-दोष हम सभी में हैं। केवल गुणवान परमेश्वर ही हो सकता है और मैं तो यहाँ तक मानता हूँ कि गुण-दोष के मिश्रण बिना चित्र पूर्ण नहीं हो सकता। जैसे फोटो पूरा सफेद ही आये और कुछ भी कालिमा न आये तो वह फोटो नहीं कहलावेगा। कालिमा बहुत बढ़ जाय तब भी चित्र खराब हो जाता है। जैसे कबीरदास ने कहा है कि भगवान् ने मुझे केवल मीठा ही खिलाया है मगर सिर्फ एक ही स्वाद या रुचि से मजा नहीं आता है, उसमें रुचि-परिवर्तन हो तभी मजा आता है। यह समझकर एक-दूसरे पर प्यार कर सकेंगे तो हमारी मन की भिन्नता चली जायगी। संस्कृत का एक श्लोक है—'न संशयमनारुह्य नरो भद्राणि पश्यति।' मनुष्य खतरे में कूदता है तो शायद न भी बचे लेकिन खतरे में जान डालकर बचा तो कल्याण होता है। लेकिन जो खतरे में नहीं कूदता, वह ज्यादा खतरे में है। वह न

केवल कल्याण के ही दर्शनों से वंचित रहता है, वल्कि उसका जीवन शिवहीन वन जायगा यानी जीकर भी मरे के समान होगा।"

१ अप्रैल, १९५१ से गोसेवा-संघ का काम सर्व-सेवा-संघ की तरफ से चलने लगा व इस विभाग का नाम 'अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ, कृषि-गोसेवा-विभाग' कर दिया गया। उसका कार्यालय पूर्ववत् गोपुरी में ही था और इस विभाग के मंत्री का काम भी पूर्ववत् राधाकृष्ण वजाज व उप-मंत्री का श्री वलवन्तरावजी देशपांडे के जिम्मे रहा। १ अगस्त, १९५२ से कार्यालय पीपरी आ गया था। जनवरी, १९५४ से स्वतन्त्र विभाग वन्द कर दिया गया। सारा काम मुख्य दफ्तर से चलता है।

नीति-निर्धारण

गोसेवा-संघ की नीति का निर्धारण स्वयं पू० वापूजी करते रहे हैं। उनके वाद पू० विनोवाजी की राय से नीति का निर्धारण होता रहा है। संघ के कार्य में अध्यक्षा श्री जानकीदेवीजी वजाज के अलावा पूज्य किशोर-लाल भाई मश्रूवाला, आचार्य काकासाहव कालेलकर, श्रीकृष्णदासजी जाजू, डा० राजेन्द्रप्रसादजी आदि की विशेष सलाह मिलती रही है। शास्त्रीय वातों में श्री सतीशचंद्रदास गुप्ता, सरदार दातारसिंह, डा० हर्ष-वहादुर शाही, श्री य० म० पारनेरकर, श्री प० आ० म्हात्रे और श्री परमे-श्वरीप्रसाद गुप्त से सलाह मिलती रहती है। इनके अलावा जगह-जगह से सरकारी विशेषज्ञों की और प्रत्यक्ष कार्य में लगे हुए गोपालक एवं पशु-विशेषज्ञों की सलाह संघ लेता रहता है।

● ● ●

: ख : वर्धा के चालू कार्य

गोसंवर्धन गोरस-भंडार

गोसेवा-संघ की स्थापना के बाद पहला काम यह हुआ कि वर्धा शहर में गाय का दूध सुगमता से प्राप्त हो, इसलिए गोरस-भंडार की स्थापना १६४२ में की गयी। आज १६५५ में इस भंडार में ३ गौशालाओं, २८ ग्वालों तथा ७० किसानों का दूध आता है। रोजाना करीब २५ मन दूध वितरित होता है। जून से सितम्बर तक चार महीने हर साल गायों का दूध घट जाता है। उस समय दो-तिहाई से कम दूध रह जाता है। गत वर्ष दिसंबर में दूध अधिक बढ़ा तो दूध के भाव घटाने के बदले दूध का माप ८० तोले से ६० तोला कर दिया। इससे दूध ज्यादा बिका। भाव घटाते तो दूध की खपत नहीं बढ़ती। यह प्रयोग बहुत सफल रहा। आजकल दूध का भाव घर-पहुँच ६ आने सेर है। गाय का घी भी बनता है। उसका भाव ८ रुपये सेर है। गोव्रतधारियों को साढ़े सात रुपये सेर दिया जाता है।

गोरस-भंडार में निम्न शर्तों पर ग्वालों को लिया जाता है :

१. जिसके पास खेती की जमीन भी हो।

२. अपनी कुछ गायें हों। केवल गौलाऊ नस्ल का ही सांड रखा जायगा। गायें स्थानीय, जो भी मिलें, रख सकता है, किन्तु जहाँ तक हो सके गौलाऊ ही रखी जायँ। पूरा दूध गोरस-भंडार को ही देना होगा, दूसरे को बाजार में नहीं बेच सकता। केवल गायें ही रहें, भैंस या बकरी न हों।

इस तरह का जो व्यक्ति अच्छे व्यवहार का मालूम हो, उसे भंडार में दाखिल करते हैं। उसे दूध के दाम बाजार भाव से दिये जाते हैं। गोरस-भंडार के वितरण के खर्चे के लिए १० प्रतिशत कमीशन काट लिया

जाता है। इस कमीशन में से भंडार का खर्च और बचे दूध की घटी निकल जाती है। ग्वालों को पाँच सौ रुपयों तक की गायें खरीदकर भंडार की ओर से दी जाती हैं। हर माह दूध की रकम में से किस्तवार रुपये जमा कर लिये जाते हैं। रकम पर ब्याज नहीं लिया जाता। दाना और खली जरूरत के अनुसार भंडार की ओर से दी जाती रहती है। महीने के अन्त में दूध से रकम जमा कर ली जाती है। जो व्यक्ति साल के शुरू में दाना संग्रह करने के लिए कहे तो उतना ही संग्रह उसके लिए कर लिया जाता है। वह उसे मय खर्चे के लागत भाव पर ही दिया जाता है। रकम का ब्याज नहीं गिना जाता। भाव की घटा-बढ़ी की जिम्मेदारी उसकी रहती है।

गोरस-भंडार के अन्तर्गत दूध देनेवाली गायें करीब ५५० तथा कुल पशु-धन १४०० है। ग्राहक १३०० हैं। वर्धा रेलवे स्टेशन पर भी संघ का दूध वेचा जाता है। वहाँ संघ की ओर से दो आदमी हर गाड़ी पर रहते हैं। रोजाना करीब दो मन दूध बिकता है।

गोरस-भंडार में २५ कार्यकर्ता हैं। वार्षिक खर्च १६००० रुपये है। दूध की शुद्धता कायम रहे, इसलिए बीच-बीच में लेक्टोमीटर-टेस्ट लेते रहते हैं और शंका हो तो घृत जाँच कर लेते हैं। बाद में मावा या छेना बनाकर जाँच लेते हैं। अन्त में तीन चार घर जाकर सारी गायें सामने दुहा-कर उस दूध की जाँच कर ली जाती है। देखा गया है कि मावे या छेने की जाँच और सामने दुहाना, ये दो ही बातें ज्यादा-से-ज्यादा सही निर्णय दे सकती हैं।

साधारणतः शहर में गाय के दूध की बहुत अधिक माँग नहीं है। इसलिए ग्वाले डरते रहते हैं कि भंडार यदि उनका दूध बन्द कर दे तो उन्हें दूध वेचने में बड़ी दिक्कत होगी और भंडार से जो सुविधाएँ मिलती हैं उनसे वे वंचित हो जायँगे। ऐसा भी देखा गया है कि ग्वाले जब स्वतंत्र रूप से दूध वेचते थे तब मुख्य आदमी की शक्ति दूध बेचने

में और पैसा वसूल करने में तथा दाना, खली खरीदने में चली जाती थी। रकम की तंगी के कारण कई बार दाना, खली भी गायों को बराबर नहीं मिलती थी। लेकिन गोरस-भंडार में दूध देने से मुख्य आदमी गायों की सेवा के लिए खुले हो गये। नतीजा यह हुआ कि गायों की देख-भाल अच्छी होने से दूध बढ़ गया। जो ग्वाले पहले भैंस रखा करते थे, वे अब गायें रखने लगे हैं। वे अपना अनुभव बताते हैं कि भैंस की अपेक्षा गाय लाभदायी सिद्ध हुई है। अच्छे सांड से गायें गाभिन होने के कारण बछड़ों की कीमतें अच्छी मिल जाती हैं। गायें बीमारियों से कम मरती हैं। और समय-बे-समय, थोड़ा-बहुत चारा-दाना कम मिलने पर भी दूध देती रहती हैं। भैंस बिना पूरी खुराक के दूध नहीं देती। भैंस के मुकाबले में गाय ब्याती भी जल्दी हैं। गाय का दूध बराबर बिकता रहे, तो उन लोगों को गाय अधिक पुसाती है।

गाय का दूध बेचने में एक दिक्कत यह आती है कि हलवाई या होटलवाले उसे नहीं खरीदते; क्योंकि उसमें खोवा कम निकलता है। गाय का दूध केवल गृहस्थों को ही बेचना पड़ता है। गृहस्थों को दूध सुबह ६ बजे चाहिए, इसलिए रात को ३ बजे से दूध दुहना शुरू किया जाता है, तब समय पर उन्हें दूध पहुँचा पाते हैं। गोरस-भंडार में सुबह ५ बजे और शाम को ५ बजे दूध आ जाता है। गो-दुग्ध के ग्राहक कम होने के कारण दूर-दूर बिखरे होते हैं, इस कारण दूध बाँटनेवाले आदमी अधिक रखने पड़ते हैं और खर्च भी बढ़ जाता है।

पीपरी में किसानों से दूध खरीदते हैं। हमें शंका थी कि दिन भर काम करनेवाला किसान रात को इतनी जल्दी दूध कैसे निकाल सकेगा; लेकिन अनुभव ने बताया कि जब आमदनी होती है, तो तकलीफ उठाने के लिए मनुष्य तैयार रहता है। आज बराबर ३ बजे गोशाला में घंटी बजती है तब सारे देहात के गायवाले जग जाते हैं और ४ बजे तक अपना-अपना दूध ले आते हैं। जब से गोरस-भंडार का काम चला है, ग्वाले अपनी गायों

को खुराक देने लगे हैं। उनकी गायों का दूध बढ़ा है, तन्दुरुस्ती ठीक हुई है और बछड़े अच्छे होने लगे हैं। किसानों से दूध लेते समय यह खयाल रखा जाता है कि उनके बच्चों के लिए वे थोड़ा दूध रखें। आम तौर पर तो हमारी यही राय है कि किसानों को दूध नहीं बेचना चाहिए। उन्हें घी निकालकर घी बेचना चाहिए। और उस घी की क़ीमत से चारा-दाना खरीदकर गाय को देना चाहिए। घरवालों को मेहनत और चारे के बदले छाछ और बछड़े मिलते रहें तो संतोष मानना चाहिए। छाछ में दूध के सारे आवश्यक तत्त्व मिल जाते हैं। यदि किसानों को आध सेर छाछ फी व्यक्ति रोजाना मिलती रहे तो ६० प्रतिशत बीमारियाँ कम हो जायँगी और बच्चों के स्वास्थ्य में सुधार होगा। उनके चेहरों पर तेज प्रकट होने लगेगा। शहरों के लिए दूध ग्वालों से ही लेना चाहिए। आसपास के किसानों के पास अधिक दूध हो तो वह भी लिया जा सकता है। गोसेवा-संघ का स्मरण वर्धा शहरवालों को इस गोरस-भंडार के जरिये नित्यप्रति होता रहता है। आज भारतवर्ष में बहुत कम स्थान ऐसे मिलेंगे, जहाँ पर गाय का शुद्ध दूध इतनी मात्रा में मिलता हो। हमारा प्रयत्न इस प्रवृत्ति को बहुत कुछ बढ़ाने का है। हम चाहते हैं कि वर्धा शहर का प्रत्येक बच्चा गाय का ही दूध पीवे।

स्थानीय नस्ल-सुधार प्रयोग

पूज्य विनोबाजी ने करीब तीस साल से केवल गाय के घी-दूध का व्रत ले रखा है। साधारण तौर से सारे आश्रम में गाय के ही घी-दूध के सेवन की वृत्ति रही है। आज तो यह नियम ही बन गया है कि गोपुरी का कोई भी निवासी भैंस का घी-दूध सेवन नहीं कर सकता। गाय का दूध मिलने में पंद्रह वर्ष पहले वर्धा में बड़ी कठिनाई थी। इसलिए आश्रम में गायें रखने का विचार हुआ। श्री रामदास भाई को उसकी प्रेरणा हुई और उन्होंने १७ जून, १९३६ को मानोली देहात में गायें रखना शुरू किया।

१९४० में वह गौशाला गोपुरी में आ गयी। पू० विनोबाजी की सदा से यही राय थी कि स्थानीय गायों की तरक्की की जाय। इस दृष्टि से स्थानीय गौलाऊ नस्ल की गायें ही रखी गयीं। उनकी देख-भाल ठीक बच्चों की तरह की गयी। हमें कोई शास्त्रीय ज्ञान नहीं था और न कोई विशेषज्ञ हमारे पास था। गाय का स्नेह और काम की लगन, इन दोनों को लेकर हम आगे बढ़ते गये और आज इस दशा पर पहुँच गये।

हम कहाँ तक पहुँचे हैं, इसका हमें अभी पूरा पता नहीं है। हमें तो यह मालूम होता है कि अभी दिल्ली दूर है। अभी बड़ी-बड़ी मंजिलें तय करनी हैं। फिर भी नस्ल की प्रगति ठीक हो रही है। इसे हम महसूस करते हैं। बेटी, माँ और नानी तीनों को खड़ा करके देखने पर आँखें ही प्रगति बता देती हैं। यह प्रगति शास्त्रीय दृष्टि से किये गये परिश्रम से हुई है। गायों का दूध भी बढ़ा है। जो बछड़ियाँ पाँच साल में बच्चा देती थीं वे चार साल के भीतर ही देने लगी हैं। प्रयाग की कुछ गायों ने, जिन्हें खास खुराक दी गयी थी, ३ साल के भीतर ही बच्चे दिये हैं। कुछ गायों ने अपवाद-रूप में दो हजार सेर तक दूध दिया है। खर्चे की दृष्टि से भी कम-से-कम खर्च में काम निकालने का प्रयत्न किया गया है। कहा जा सकता है कि गत १५ वर्षों में गायों ने जितना खाया, उतना ही लौटा दिया। आर्थिक सफलता का मुख्य कारण श्री रामदास भाई जैसे लगन और सूझबूझवाले एवं तन, मन और सेवा-भाव से काम करनेवाले व्यक्ति का केवल भोजन-खर्च पर मिल जाना है। दूध सारा बिकता गया। खाद का खेत में उपयोग हो गया, बछड़ों की कीमतें अच्छी आ गयीं। मृत्यु-संख्या कम हुई। रकम का व्याज गिना नहीं। पशुओं की कीमतें बढ़ती गयीं। ऐसे अनेक कारण भी रहे। एक विशेष बात यह भी रही कि सांड के लिए आवश्यक दो-चार बछड़े रखकर बाकी बछड़े माँ का दूध छूटते ही बेचते गये, और बछड़ियाँ भी कम करते गये, उससे भार हल्का होता

रहा। सारी बछड़ियों को गाय या बछड़ों को बैल बनाने तक रखते तो आज के अर्थशास्त्र में टिकना कठिन था।

भारत के बड़े-बड़े विशेषज्ञों में इस बात पर बड़ा मतभेद है कि गाय की दूध देने की शक्ति और बैल की हल जोतने की शक्ति, दोनों साथ-साथ बढ़ा सकते हैं या एक के बढ़ने पर दूसरी घटती है? हमारा अब तक का अनुभव तो यह है कि दोनों शक्तियाँ साथ-साथ बढ़ी हैं। जिन गायों का दूध बढ़ा, उन्हें खुराक अच्छी मिली, वे हृष्ट-पुष्ट रहीं और उनके बैल भी खेती के लिए अधिक उपयोगी साबित हुए।

गोसंवर्धन घी-केन्द्र

वर्धा से २५ मील दूरी पर पीपलखूंटा के पास गुंडमुंड में संघ का एक केन्द्र है। वहाँ पर सूखी गायें व बछड़े-बछड़ियाँ रखी जाती हैं। वहाँ करीब २०० एकड़ जमीन संघ के अधीन है और नजदीक ही सरकारी जंगल है। वहाँ के पहाड़ों में पानी की कमी है। स्थानीय गायों की उन्नति की दृष्टि से वहाँ आसपास के गाँवों से गाय का दूध सामने दुहाकर खरीदा जाता है। यहाँ के ग्वालों के लिए भैंस न रखने का प्रतिबन्ध नहीं है। उस दूध का दही जमाकर घी निकालते हैं। गाँववालों से ५ आना सेर से दूध खरीदते हैं। करीब २७ सेर दूध से एक सेर घी निकलता है। वह साढ़े आठ रुपया सेर के भाव से गोरस-भंडार को बेच देते हैं। इसमें दूध की कीमत निकल आती है। दूध लेना, दही जमाकर घी निकालना आदि मेहनत के बदले छाछ मिल जाती है। यह छाछ बछड़े-बछड़ियों को पिलाते हैं। २-३ साल से बराबर यह अनुभव हो रहा है कि छाछ के कारण गुंडमुंड के बछड़े-बछड़ियाँ बड़ी ही हृष्ट-पुष्ट—ताजी-तवानी—रहती हैं और जल्दी जवानी में आती हैं। गर्मी में भी उनके शरीर की कान्ति कम नहीं होती। लेकिन दूध खरीदने का यह सिलसिला अगस्त से फरवरी तक—सात महीने ही चलता है। बाद में पहाड़ों में पानी की कमी के कारण ग्वाले गायों को

लेकर वर्धा नदी के किनारे चले जाते हैं और वहीं सारी गर्मी बिताते हैं। वर्षा के बाद लौटते हैं और इस दूध-खरीदी के कारण गुंडमुंड के आसपास की गायें सुधरती जा रही हैं। उन्हें दाना मिलने लगा है। अच्छे सांड की सुविधा मिल जाती है। यह सारा क्षेत्र पहले से ही गौलाऊ-नस्ल का अच्छा क्षेत्र रहा है। पहले ग्वाले केवल बछड़ों का ही ध्यान रखते थे, अब दूध का भी ध्यान रखने लगे हैं। इस तरह इस केन्द्र में नस्ल-सुधार तेजी से होने लगा है।



परिशिष्ट : २

गोवध-बन्दी क्यों ?

गोवध-बन्दी सम्पूर्ण होनी चाहिए। उसे आंशिक (Partial) या उपयोगी (Useful) तक सीमित रखने से काम नहीं निभेगा। गोरक्षा एवं संपूर्ण गोवध-बन्दी भारतीय संस्कृति का एक अपरिहार्य अंग है। भारत कभी गोवध सह नहीं सकेगा। गो से मेरा मतलब गाय, बैल, बछड़े—संपूर्ण गोवंश से है। सम्पूर्ण गोवध-बन्दी की यह भावना एकमात्र गोवंश के लिए है, उसमें भैंस आदि पशु नहीं आते। उपयोगी पशुओं की रक्षा की दृष्टि से भैंस, घोड़े आदि अन्य उपयोगी पशुओं का कत्ल बन्द करने के लिए स्वतंत्र कानून बनाना पड़े, तो हमें उसमें कोई आपत्ति नहीं। भारतीय संस्कृति की यह विशेषता है कि वह गोवध रोकती है। विश्वशान्ति के लिए यह आवश्यक है कि स्वार्थपरायणता घटे, कृतज्ञता व सेवापरायणता बढ़े। भारतीय संस्कृति ने गोरक्षा द्वारा मानव को इस ओर ले जाने का प्रयत्न किया है। गोवध बंद करना मानवता की रक्षा करना है। जन्म देनेवाली माता ने हमें केवल साल भर दूध पिलाया, लेकिन गोमाता तो जन्म भर पिलाती है। बिना लोहे व कारखाने के 'बैल' एक ऐसा इंजन है, जो बिना तेल के स्थानीय घास पर चलता है। गाय ऐसी खाद देती है, जो हजारों वर्षों से हमारी भूमि की उपजाऊ शक्ति कायम रखती आ रही है। ऐसी परोपकारी गाय को हम कम-से-कम सम्मान दें, तो भी माँ से कम नहीं मान सकते। गाय जीवन भर हमें उत्पादन देती है। जिसने अपने जीवन में हमें हजारों का लाभ दिया, वही बुढ़ापे में साल-दो साल बैठकर अपनी मौत मरना चाहती है; उस समय भी वह खाद तो देती ही रहेगी। फिर भी उस अर्से में सौ-दो सौ रुपया खर्च होगा। उसीकी कमाई में से होनेवाले इस खर्चे को बचाने के

लोभ से उसकी कत्ल करने का विचार करना मानवता को गिराना है। मनुष्य केवल अर्थ के बल पर नहीं जीता। भावना का उसके जीवन पर भारी असर होता है। भावना के लिए मनुष्य ही नहीं, राष्ट्र के राष्ट्र मर मिटते हैं। गोवध-बन्दी के लिए भावना का होना पर्याप्त कारण मानना चाहिए।

भैंस या बकरी का कत्ल रोकने का कानून बनाने की सिफारिश हम इसलिए नहीं करते कि इनके वंश को बचा सकना हमें संभव नहीं दीखता। उनके नरों से काम नहीं लिया जाता। जिनसे काम नहीं लिया जाता, उनको हमेशा खाना देना मनुष्य के लिए संभव नहीं हो सकता। गाय के नर-मादा, दोनों से हमें काम मिलता है। इसलिए उसे बचाना संभवनीय माना है। गो-दूध, गो-घृत मनुष्य के लिए सर्वोत्तम हैं। गोवध-बन्दी के बाद जो समस्याएँ खड़ी होंगी उनके हल करने के लिए हमारे सुझाव इस प्रकार हैं :

(क) जंगली (Wild) (ख) आवारा (Stray) (ग) कम उत्पादक (Uneconomic)	इन तीनों श्रेणियों के गाय और बैल, दोनों से खेती जोतने का उनकी शक्ति के अनुसार हल्का या भारी काम लिया जाय।

(घ) बूढ़े (Old)—यह श्रेणी उन बूढ़े पशुओं की है, जो चल-फिर कर खा सकते हैं। इन जानवरों को गोसदनों में भेज दिया जाय।

(च) अपंग (Lame, Blind and Lunatic) यह श्रेणी लूले, लँगड़े, अंधे पशुओं की है जो घूम-फिर नहीं सकते। उन्हें पिंजरापोल या गोरक्षण संस्थाओं में रखा जाय।

(छ) बेकाम सांड (Scrub Bulls) धार्मिक दृष्टि से छोड़े हों या वैसे ही घूमते हों। जो सांड नस्ल-सुधार के लिए उपयोगी नहीं हैं, उन्हें वधिया करके काम में ले लेना चाहिए। बूढ़े हों, तो गो-सदन में भेज दिये जायँ।

गाय को जोतने के विषय में लोगों की भावना तैयार करनी होगी। जब लोग देखेंगे कि बिना काम लिए गाय को खाना देना या बचा सकना सम्भव नहीं, तो वे काम लेने के लिये तैयार हो जायँगे। आज पुराने जमाने की तरह जनसंख्या कम और जंगल अधिक नहीं हैं। बढ़ी हुई जनसंख्या को मद्देनजर रखकर थोड़ी जमीन से काम निभाना होगा। मैसूर स्टेट में आज भी गायों से खेती जोतने का काम लिया जाता है।

हिन्दूधर्म और आज के हम हिन्दू, इनमें फर्क करना होगा। हिन्दू-धर्म की भावना गोरक्षा के लिए अत्यन्त तीव्र है। लेकिन आज के जमाने में हमारा नैतिक स्तर ही नीचे आ गया है। इस कारण सभी बातों में ढिलाई आ गयी है। इसका इलाज है, देश का पूरा नैतिक स्तर ऊँचा उठाना। देश में आज जो भूदान आन्दोलन चल रहा है वह देश का नैतिक स्तर ऊँचा उठाने में सहायक होगा, ऐसी आशा है।

हम किसी भी तरीके के नये गोटैक्स या पशु-सेस को ठीक नहीं समझते। आज खुशी से पुरानी गोशालाओं की जो लाग-बाग चालू है उसीको कानूनी बनाकर सब मंडियों पर लागू करना काफी है। अनुत्पादक गाय से उसकी शक्ति के अनुसार काम लेने में कोई हर्ज नहीं होना चाहिए। आज के जमाने में बिना काम लिये खाना देना संभव नहीं है। अनुत्पादक गाय से काम नहीं लिया, तो उसको बचा सकना असम्भव है।

हम देखते हैं कि कई शास्त्रज्ञ गाय के हित में ही गोवध जारी रखना चाहते हैं। वे समझते हैं कि गोवध चालू रहा, तो गाय की हालत अच्छी रहेगी और गोवध बन्द होने से हालत एकदम बिगड़ जायगी। उनकी सद्भावना की हम कदर करते हैं। फिर भी वे सोचें कि आज जब कि १५० वर्ष से बराबर अनिर्बंध गोवध जारी है, तो क्या गाय की हालत सुधरी या बिगड़ी? १५० वर्ष गोवध कायम रखकर भी गाय की हालत बिगड़ती गयी, तो अब गोवध बन्द करके देश की भावना को तो सन्तोष दीजिये। इतनी

हालत बिगड़ी है उसमें और थोड़ी बिगड़ जावेगी, ज्यादा क्या होना है? वास्तविक देखा जाय, तो गाय की हालत सुधरने-न सुधरने का आधार केवल गोवध या गोवध-बन्दी नहीं है। उसका आधार गोपालन के विधायक तरीके हैं। देश की भावना की कदर करके हमें सम्पूर्ण गोवध बन्द करना चाहिए और उससे पैदा हुई सद्भावना को बटोरकर विधायक गोपालन से गाय की व भारत की दशा सुधारनी चाहिए।

खर्च

गोसदन के खर्च के लिए आम जनता पर गो-टैक्स या गाय-भैंस-वालों पर पशुसेस (Cess) नहीं बैठाना चाहिए। ऐसा करने में गाय के प्रति एक विरोधी भावना तैयार होगी। जहाँ तक बने वहाँ तक गाय को स्वावलम्बी बनाना चाहिए। अनुत्पादक पशु कम-से-कम पैदा हों, नस्ल-उत्पादन नीति (ब्रीडिंग-पॉलिसी) के द्वारा इस पर नियंत्रण करना चाहिए। जो हैं उनसे काम लेना चाहिए। फिर भी कुछ खर्च तो होगा ही। कई जगह व्यापारी मण्डियों में गोशालाओं के लिए 'लाग-बाग' चालू है। उसीको कानूनी बनाकर सब मण्डियों पर लागू कर दिया जाय। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था हो, आधी लाग उसे दी जाय और आधी गोसदन के लिए रखी जाय। जहाँ स्थानीय गोरक्षण संस्था न हो वहाँ की पूरी आमदनी गोसदन के लिए रहे।

गोरक्षण संस्था के मुख्य दो काम होने चाहिए :

(१) अपंग पशुओं का पालन।

(२) अच्छे सांडों का निर्माण।

अच्छे सांडों का प्रचार करके अनुत्पादक पशुओं की वृद्धि रोकनी चाहिए। इस नीति से बराबर काम होता रहा, तो एक समय ऐसा आ सकता है जब गाय पूर्ण स्वावलम्बी हो जाय। इतना ही नहीं, बचत भी देने लगेगी। ऐसा समय आने पर अधिकांश लोग बूढ़ी गायों को

गोसदन न भेजकर घर पर ही पाल लेंगे। केवल खाद ही के लिए हमारे मध्यप्रदेश में गायें रखी जाती हैं। भारत के किसानों को बूढ़ी और जवान, सब मिलकर खर्च से थोड़ी अधिक आमदनी होती रही, तो वह अधिक मुनाफे के लिए बूढ़ी गायों को गोसदन नहीं भेजेंगे।

राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में खाद की कीमत बाजार दर से न लगाकर खाद के डालने से जितने वर्षों तक जितनी पैदावार अधिक हो उस पर से लगाना चाहिए।

गोवध-बन्दी से चमड़े के व्यापार पर बुरा असर पड़ेगा। जवान और कत्ल की गयी गाय का चमड़ा जैसा मिलता है वैसा बूढ़ी और बीमारी से मरनेवाली गाय का नहीं हो सकता। चमड़े के धन्धे में कुछ नुकसान होगा, यह मानकर ही हमने गोवध-बन्दी की सिफारिश की है। भावना का मूल्य इन छोटे-मोटे लाभों के मुकाबले बहुत अधिक होता है। हम सिद्धान्त रूप से मानते हैं कि धर्म और अर्थ का विरोध नहीं होना चाहिए। नहीं तो वैसा धर्म सदा नहीं टिक सकता। कत्ल करने में अधिक बचत हो सकती है। बात सही है, परंतु आज का अविचारपूर्ण कत्ल तो देश का बहुत भारी आर्थिक नुकसान कर रहा है।

हमारा यह विश्वास है कि आज भी गाय भारत के राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में स्वावलम्बी है। छोटे से लेकर बूढ़े तक, जितना खर्च राष्ट्र का गोवंश पर होता है, उससे अधिक उत्पादन राष्ट्र को वह देती है। कत्ल बन्द करने पर भी वह खर्च से अधिक उत्पादन देगी। नस्ल-सुधार होने पर तो वह बहुत बड़ी बचत देगी। लेकिन हमें व्यक्तिगत अर्थशास्त्र और राष्ट्रीय अर्थशास्त्र में भेद समझना चाहिए। व्यक्तिगत अर्थशास्त्र माँग और पूर्ति (Demand and Supply) पर आधारित होता है। वह केवल 'अनर्थ-शास्त्र' है। राष्ट्रीय अर्थशास्त्र यह है कि राष्ट्र को कितना धन पोषण में खर्च करना पड़ा और कितना वापस मिला। इसका हिसाब मेहनत, वस्तु आदि के रूप में लगाना होता है, पैसे के रूप में नहीं।

विधायक कार्यक्रम

(१) शहरों में गो-संवर्धन के लिए गोरस-भंडार कायम हों। वहाँ देहातों से दूध लाया जाय। यह काम मुनाफे की नीयत बिना केवल सेवा-भाव से काम करनेवाली एजेन्सी द्वारा होना चाहिए।

(२) बड़े शहरों में ग्वाले, दुग्धालय (Dairy) नहीं होने चाहिए। जहाँ प्रति पशु आधे से एक एकड़ जमीन हो वहीं गायें रहनी चाहिए।

(३) बड़े-बड़े शहरों में निजी तौर से गायें रखनेवाले उन्हें बिना इजाजत न रखें। और उन्हें इजाजत भी तब दी जाय जब यह विश्वास हो जाय कि उनके पास गाय को पालने के पर्याप्त साधन हैं।

(४) हर किसान के पास गायें हो और हर ग्वाले के पास जमीन हो। गाय और भूमि, दोनों साथ-साथ रहें।

(५) गोरक्षण संस्थाएँ शहर से बाहर ही, जहाँ गायों के अनुपात में भूमि प्राप्त हो सके, रहनी चाहिए।

(६) गोरस व्रत का यानी गाय के ही घी-दूध का इस्तेमाल करने का प्रचार किया जाय, ताकि गोरस के लिए बाजार (Market) बना रहे।

(७) शहर को दूध देने की कोई भी योजना बने तो यह खयाल रखा जाना चाहिए कि हर पशु के पीछे आधे से एक एकड़ जमीन उस स्थान पर होनी चाहिए। जहाँ पर्याप्त जमीन मिल सके वहीं बस्ती (Colony) की जाय।

(८) हर देहात में अन्न की योजना (Food planning) है, इसी तरह चारे-दाने की योजना (Fodder planning) भी होनी चाहिए।

(९) हर देहात में कुल भूमि की १० या १२ फीसदी जमीन गोचर भूमि के रूप में रहनी चाहिए।

(१०) जंगलों में बड़े-बड़े चरागाह हैं। उन पर प्रयोग कर उनमें अच्छा चारा पैदा करने के सुधार होने चाहिए।

(११) खाद का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

(१२) चमड़ा कमाना तथा मृत पशु के हाड़, मांस, सींग आदि का पूरा उपयोग किया जाना चाहिए।

(१३) देशी और सस्ती पशु-चिकित्सा को अधिक प्रोत्साहन देना चाहिए।

(१४) जो भी प्रयोग हो उसकी सफलता का निर्णय देहातों में किसानों के जरिये उसका व्यवहार देखने के बाद किया जाय।

(१५) शिक्षा ऐसी हो जिसमें किताबी थोड़ी और प्रात्यक्षिक अधिक हो।

ग्रामोद्योग

देहातों को स्वावलम्बी बनाने के लिए खेती और गोपालन के साथ ग्रामोद्योगों का होना अत्यन्त आवश्यक है। खेती और गोपालन से जो समय बचे उसमें जितनी भी कमायी हो सके वह आवश्यक है। जितनी भी चीजें देहात में कच्ची की पक्की हो जायँ उतना ही देहात शहरों की लूट से बचेगा, स्वावलंबी होगा। कम-से-कम अन्न-वस्त्र के सम्बन्ध में आवश्यक सारी जीवनोपयोगी वस्तु देहात में ही तैयार हो जानी चाहिए।

सौ मन का भारी पलड़ा नीचे बैठा है। दूसरे पलड़े में पंचानवे मन बोझ पड़ा है। उसमें केवल छह मन बोझ अधिक पड़ जाय, तो सौ मन का भारी पलड़ा उठ जायगा। यहाँ जैसे छह मन को हम छोटा नहीं गिन सकते वैसे ही ग्रामोद्योग की आमदनी थोड़ी होने पर भी वह कृषि और गोपालन के पलड़े में पड़ेगी। इसलिए उस आमदनी को कम न माना जाय। उसका मूल्य जीवन-विकास में अत्यधिक है। कृषि, गोरक्षा और ग्रामोद्योग मिलकर ग्राम का अर्थशास्त्र स्वावलंबी होगा।* ● ● ●

---

* गो-संवर्धन जाँच-समिति के समक्ष दिया गया वक्तव्य।

—सम्पादक

परिशिष्ट : ३

गोपालन-संस्थाओं का नामकरण

नाम से संस्था के काम का स्वरूप ध्यान में आ सके इस दृष्टि से आज जो प्रचलित नाम हैं उनमें किसका कहाँ उपयोग किया जाय इस पर विचार करके निम्न निश्चय पर पहुँचे हैं। ये नामकरण मुख्य उद्देश्य को नजर में रखकर किये गये हैं। वैसे एक विभाग में दूसरे विभाग रह ही सकते हैं। जैसे पिंजरापोल, गोरक्षण व गोसदन में सेवा-विभाग के साथ संवर्धन-विभाग रह सकता है; वैसे ही गौशाला व गोकुल में संवर्धन-विभाग के साथ सेवा-विभाग रह सकता है।

१. पिंजरापोल—आबादी के पास-पड़ोस में बूढ़े, लूले, लँगड़े, अपंग पशुओं के रक्षण का स्थान। जिसमें गाय के अलावा अन्य पशु भी लिये जा सकते हों। इन पशुओं की वृद्धि अवांछनीय होती है। इसलिए ऐसे स्थानों में सांड न रखकर प्रजनन बन्द किया जाता है।

२. गोरक्षण—इसमें पिंजरापोल से एक ही फ़र्क है कि गाय के अलावा अन्य पशु नहीं लिये जाते हों।

३. गोसदन—इसमें गोरक्षण से इतना ही फ़र्क है कि गोरक्षण का स्थान बस्तियों के नजदीक होगा और इसका स्थान बस्तियों से दूर।

४. गोशाला—गोसंवर्धन के लिए आवश्यक सारे शास्त्रीय प्रयोग करनेवाली संस्था। इसमें अच्छे सांड रखकर नस्ल सुधारी जावेगी, वंशावली रहेगी, अच्छे सांड निर्माण किये जायँगे। प्रजनन के व चारे-दाने के सब तरह के प्रयोग होंगे। संक्षेप में यह स्थान शास्त्रीय गोपालन का केन्द्र होगा और साथ में खेती जुड़ी होगी। उसमें चारे-खेती के प्रयोग होंगे।

५. अनुसंधानशाला—नया शोध करनेवाली संस्था : जैसे कृषि-अनुसंधानशाला, मवेशी-अनुसंधानशाला, पशु-चिकित्सा अनुसंधान-शाला आदि।

६. गोप-विद्यालय—गौशाला में चलनेवाले गोपालन की व साधारण खेती की शास्त्रीय व प्रात्यक्षिक शिक्षा देने का स्थान। जिसमें प्रमुख स्थान गोपालन को व खेती को द्वितीय स्थान हो, उसे गोप-विद्यालय व जिसमें खेती को प्रमुख व गोपालन को द्वितीय स्थान हो, उसे कृषि-विद्यालय कहना चाहिए।

७. नंदीशाला—नस्ल-सुधार के लिए सांड रखने का घर। इस घर से जुड़ा एक चौक होना चाहिए, जहाँ पर गाय छोड़ी जा सके और सांड सर्विस कर सकें।

८. देशी पशु-चिकित्सालय—सब तरह के पशुओं के इलाज की व्यवस्था हो। चिकित्सा की पुरानी व नयी पद्धतियों का इस्तेमाल होता हो, लेकिन स्थानीय व स्वदेशी औषधियों को प्रथम स्थान दिया जाता हो।

ऊपर की आठों संस्थाएँ सेवा की दृष्टि से चलायी जायँगी। इसलिए इन संस्थाओं में हमेशा ही आमदनी से खर्च अधिक होनेवाला है। इन संस्थाओं की सफलता पैसे के आमद-खर्च से नहीं आँकी जायगी, बल्कि जिस उद्देश्य से वे काम कर रही हैं उसमें कितनी तरक्की कर सकीं, इससे आँकी जायगी। इन संस्थाओं को जनता की ओर से सदा ही सहायता मिलती रहनी चाहिए। ये गोसेवा की बुनियादी संस्थाएँ हैं।

९. दुग्धालय—इसका मुख्य उद्देश्य दूध-उत्पादन का होगा। अच्छी गायें रखकर उनका अच्छी तरह पालन करके व्यापारी ढंग पर बिना नुकसान उठाये दूध पैदा करना व बेचना।

१०. गोकुल—बस्ती से दूर जहाँ बड़े चरागाह हों, वहाँ गोकुल रहेंगे। इनकी कल्पना है कि इनमें बछड़े व बछड़ियों का पालन होगा। सूखे

पशुओं का पालन होगा तथा हजारों की तादाद में छोटी-बड़ी दूध-बिन-दूधवाली गायें रहेंगी व अच्छे सांड रखकर अच्छे गाय-बैल पैदा किये जायँगे।

११. गोरस-भंडार—गोदूध, दही, घी, खोवा, पेड़ा, मधुरिका आदि गोदुग्ध के बने पदार्थ बेचने का स्थान।

ऊपर की तीनों संस्थाएँ व्यापारी ढंग पर चलनी चाहिए और उनसे आमदनी होनी चाहिए। हो सकता है कि प्रारम्भ में कुछ नुकसान भी उठाना पड़े, लेकिन अन्त में ये स्वावलम्बी होनी चाहिए।

अगर हिन्दुस्तान में हम गोरक्षा नहीं कर सके तो आजादी के कोई मानी ही नहीं होते। अगर गोरक्षा नहीं होती है तो हमने अपनी आजादी खोयी और उसकी सुगन्ध गँवायी, ऐसा कहना होगा।

—विनोबा